श्रीविष्णुभगवानकृतं—

महिम्नस्तोत्रम् ।

हरि-हरतारतम्यसहितम् ।

श्रीमद्योगिवर्य्यविप्रराजेन्द्रविरचितभाष्येण तदात्मज पं० कालिकेश्वरदत्तविरचितभावार्थेन सम्वलितम् ।

प्रकाशक—

श्रीशंकरभक्त गौरीशंकर गनेडीवाला,

छपरा ।

मूल्य ।=)

श्रीविष्णुभगवानकृतं—

महिम्नस्तोत्रम् ।

हरि-हरतारतम्यसहितम् ।

श्रीमद्योगिवर्य्यविप्रराजेन्द्रविरचितभाष्येण तदात्मज पं० कालिकेश्वरदत्तविरचितभावार्थेन सम्वलितम् ।

प्रकाशक—

श्रीशंकरभक्त सेठ गौरीशंकर गनेडीवाला,

छपरा ।

मूल्य ।=)

महिम्नस्तोत्रम्

❀ श्रीशङ्करश्शरणम् ❀

प्रस्तावना।

अनेक शताब्दी से पुष्पदन्त महिम्नस्तोत्र का हिन्दूजनता में प्रचार है। प्रायः समस्त भक्तजन शिवपूजन में इसका पाठ किया करते हैं। शिवरहस्य के सप्तमांश में महिम्नस्तोत्र दो हैं—एक पुष्पदन्तप्रणीत और दूसरा श्रीविष्णुप्रणीत। पुष्पदन्तप्रणीत महिम्न का सर्वस्वदर्शन नामक भाष्य श्रीमद्योगिवर्यकृत छप चुका है।

श्रीविष्णुकृत महिम्नस्तोत्र का भी भाष्य परमहंस "श्रीविप्रराजेन्द्र" योगिवर्य्य जीने उक्त पुराणों के अनुसार श्रुति, स्मृति, पुराण आदि प्रमाणों का उल्लेख कर प्रत्येक पद का अर्थ और भाव सरल संस्कृत भाषा में सप्रमाण ग्रथित किया है। योगिवर्य जी के सभी ग्रन्थों में प्रमाणों का संग्रह दर्शनीय व अत्यन्त उपयोगी है। व्याकरण में "शब्दामृत" की रचना श्लोकों में होने के कारण व्याकरणजिज्ञासू सुलभता और अल्प परिश्रम से समस्त व्याकरण का ज्ञान सम्पादन करते हुए उसे मुखोद्गत रख सकते हैं। आर्य बन्धु-बान्धव इससे वञ्चित न हों, इस सदिच्छा से प्रकाशक इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन में दीर्घ काल से प्रयत्न कर रहे हैं। इस कार्य में योगिवर्यजी के सुपत्र पं० कालिका...

दत्त पं० अम्बिकाप्रसाद शर्मा और पं. लक्ष्मीप्रसाद शर्मा जीने पुत्र-धर्म का परिपालन करते हुए पुस्तक देकर प्रकाशन की सम्मति प्रदान की है, उसके लिये उन्हें कोटिशः धन्यवाद है, श्रीशिवजी उन्हें सत्कार्य के लिये सदा सुबुद्धि प्रदान करें। योगिराज के ग्रन्थ तथा चरित्र क्रमशः इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।

श्री परमात्मा की असीम कृपा से योगिरत्नमाला के द्वितीयरत्न भाष्य सहित श्री विष्णुकृत शिवमहिम्नस्तोत्र की सम्पादन कर आप लोगों की सेवामें उपथित करता हूँ। पाठकों की सुगमता के लिये श्लोक बहुत बड़े अक्षरों में दिये गये हैं, और उनका संस्कृत भाष्य हिन्दी भाषा में पं० कालिकेश्वर दत्त जी ने लिखा है। आप लोग इससे लाभ उठाते हुए मेरे परिश्रम को सफल कर प्रकाशक की उत्साहवृद्धि करेंगे। योगिराज जी के सुशिष्य सहस्रों की संख्या में हैं। आशा है कि इस ग्रन्थमाला को अपनाकर गुरुजी के समस्त पुस्तकप्रकाशन का श्रेय लेते हुए सुशिष्य का कर्त्तव्य पालन करेंगे। शुभम्।

आप लोगों का कृपाकांक्षी—

गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला,

छपरा।

* ॐ नमः शिवाय *

श्रीविष्णुकृतं—

महिम्नस्तोत्रम् ।

महेशानन्ताद्य त्रिगुणरहितामेयविमल-
स्वराकारापारामितगुणगणाकार निभृते ।
निराधाराधारावरपर निराधार परम-
प्रभापूराकारावरपर नमोऽवेद्य शिव ते ॥१॥

सर्वशास्त्रार्थसारौघं सर्व्वैः पूज्यं महेश्वरम् ॥
नमस्कृत्य परं भाष्यं निर्ममेऽहं शिवाज्ञया ॥१॥

अथ खल्वखिलब्रह्मविष्ण्विन्द्रादिपूज्यस्तोत्रभाष्यम्वक्तुमुपक्रमते—महेशेति। तथा चेहाणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। यत्र कामावसार्ईत्वम्प्राकाम्येशित्ववश्यतेति। ब्रह्मादिभ्योऽप्यष्टसिद्धिप्रदत्वेनापरिच्छिन्नत्वेन च महानित्यर्थः। तथैको देवो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशते ईशनीभिरित्यादिश्रुतेः, एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः। शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्व्वे शक्तिसमुद्भवा इत्यादिस्मृतेश्चेशानश्चेत्यर्थः। एवं न ब्रह्माणं न वा विष्णुं कुतोन्यान्पर्व्वतात्मिप्... तमसाहं शिवं सत्यं यास्यामि

निरुपद्रवम् ॥ यस्माद्वैधव्यजं दुःखं न भूतो न भविष्यति । अविनाशी यव श्शम्भुस्सर्वज्ञश्चाप्यनुत्तम इत्यादिस्मृत्या नाशरहितत्वेनानन्तश्चेत्यादि बोध्यम् । तथा नान्तःप्रज्ञं नो बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं प्रज्ञानघनं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं तुरीयं मन्यन्त इत्यादिश्रुतेस्त्रिगुणपरिच्छेदशून्यत्वमेव साक्षात्परवरं त्रिगुणरहितं परब्रह्मेत्यर्थः । एवमाकाशादपि विस्तीर्णः शुद्धः सूक्ष्मोऽव्ययः शिवः । य आत्मा स कथं राम जायते म्रियतेऽथवेत्यादि योगवाशिष्ठस्मृतेस्त्वप्रमेयत्वं विमलत्वं च तव सदाशिवस्यैव स्फुटीकृतमित्याशयः, तथा सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः । द्वाविंशतिस्तु श्रुतयस्तालाः पञ्चाशदूनका इत्यादिस्मृत्युक्तैः स्वरैराकीर्य्यते स्तूयते तत्रापारगुणत्वेनामितगुणागारत्वेन सकलजगद्धारणपोषणमयत्वेन च वाग्देवीधृतवल्लकीति न्यायेन रणयन्महविम्बीणां स्वरग्रामविभूषितां गायन्बृहद्रथं साम,शिवध्यानानुमोदित इत्यादि द्रष्टव्यम् । तथा यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वर इत्यादिश्रुत्या तव सर्वाधाररूपत्वे निराधारत्वेनामरवरत्वं वस्तुतस्त्वतिरिक्तस्य प्रपञ्चजातस्य कल्पितत्वेनाधेयस्यैवाभावेन निराधारत्वेन परब्रह्मत्वमेव स्फुटीकृतम् एवं तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति इत्यादिश्रुतेः । येन शब्दं रसं रूपं गन्धं जानासि राघव । वमात्मानं परब्रह्म जानीहि परमेश्वरमित्यादियोगवाशिष्ठस्मृतेश्च प्रभापूराकारत्वं तद्दूरे तद्वदन्तिके तदुःसर्वस्यास्य बाह्यत इत्यादि श्रुतेश्चामरत्वं च हे शिव ! तवैवेति तस्मै ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥१॥

भावार्थः ।

दोहा—विप्रराज गुरुवर्य्य को, हृदयकमल में ध्याय ।
टीका विष्णुमहिम्न की, भाषा करौं बनाय ॥

श्री शिव जी ब्रह्मा-विष्ण्वादिदेवों को आप अणिमादि अष्टसिद्धि देते हैं। अतः महान् हैं। अपनी त्रिविध शक्ति से इस संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं, अतः आप ईशान हैं। आप नाशरहित हैं। आपके लिङ्ग का अन्त ब्रह्मा-विष्णु भी नहीं पा सके, अतः आप अनन्त हैं। बाहर तथा भीतर की बुद्धि से आप नहीं प्राप्त होते। आप त्रिगुण से परे और निष्कल हैं। आप आकाश से भी बड़े, शुद्ध, सूक्ष्म नाशरहित और प्रमाण रहित हैं। सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, बाइस श्रुति, उनचास ताल, छ राग और छत्तीस रागिनियों से आप गाये जाते हैं। वेद के आदि और अन्त में आप कहे गये हैं। वेदान्त आपको ब्रह्मरूप कहता है। आप सबके आधार हैं। किन्तु आपका आधार कोई नहीं है। आप ही की शक्ति से सब भासमान होते हैं। अतः आप में प्रभापूराकारत्व है। आप सब जगह व्यापक होकर रहते हैं। अतएव सबसे श्रेष्ठ और वेदवेद्य हे शिव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

नमो वेदावेद्याखिलजगदुपादाननियत-
स्वतन्त्रासामन्तानवधृत निजाकारविरते ।
निवर्तन्ते वाचश्शिवमजरमप्राप्य मनसा
यतोऽशक्ताः स्तोतुं [illegible] शिव ते ॥२॥

ननु सगुणभावेन निर्गुणभावेन च तव सदाशिवस्य सर्वतः परत्वं दर्शितं तथापि न जानीमो वयं कथम्भूतस्त्वं दुःखगन्तासीति पुनराह-नम इति। एवन्तर्हि ब्रह्मण्यनिर्दिश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे इत्यादिना वेदानां ब्रह्मपरत्वं प्रतिपाद्य स्वयं कृष्णो द्वारकामगादित्याद्युक्त्या वेदानां ब्रह्मपरत्वस्याघटमानत्वेन तव परब्रह्मणः सदाशिवस्य फलाव्याप्यत्वेन वेदावेद्यत्वेप्यखिलजगदभिन्ननिमित्तोऽतद्व्यावृत्तिरूपतयोपादानत्वेन नियतत्वेन चापरिच्छिन्नत्वं तवैवेत्यनन्यगत्वात्पुनः पुनर्भवते नम इत्यर्थः। तथा ब्रह्मणश्चैव विष्णोश्च रौद्रश्चेति लयस्त्रिधा। सर्वंग्रासो महादेवो ब्रह्मण्डान्यखिलं जगदित्यादिस्मृत्युक्त्या त्वासमन्तात्सालयो यस्मिन्सो यमन्तस्सर्वंग्रासस्सदाशिवस्तथैवानवधृतिः पुरावनाधारस्सर्वसाक्षी तुरीयत्वेन निराकारस्सर्वसङ्गत्वेप्यसङ्गत्वेन विरतिश्च त्वय्येवेत्यर्थः। अतएव त्वद्यात्रया सर्वगताहता ते ध्यानेन चेतः परताहता ते। स्तुत्या हि वाचः परताहता ते ममापराधं त्रिविधं क्षमस्वेत्यादिस्मृतिन्यायेन वाचं श्रुतयोऽपि त्वां सदाशिवम्पुरातनमपि त्वामप्रमेयगुणत्वेन गुणातीतत्वमेव त्वयीति कृत्वा हे शिव ! सकृदपि स्तोतुं श्रुतयोऽप्यशक्ता इति रीत्या सगुणस्यापि तव गुणातीतत्वं स्फुटीकृतम् ॥२॥

भावार्थः।

सगुण निर्गुण दोनों भाव से शिव श्रेष्ठ हैं। इस तात्पर्य पर विष्णु भगवान कहते हैं कि [illegible] तवं [illegible] हैं तो वेदवेद्य हुए, किन्तु

निर्गुणत्व की हानि होती है। मन-वचन से परे कहें तो ध्यान कैसे होगा। यात्रा से प्रसन्न करें तो व्यापकत्व की हानि होती है। ध्यान-स्तुति से प्रसन्न करें तो परत्व की हानि होती है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक फलव्याप्तिज्ञान, दूसरा वृत्तिव्याप्तिज्ञान, दोनों का लक्षण दीप के प्रकाश से गृह में घटपटादि वस्तुओं का नेत्र के समक्ष प्रगट होना फलव्याप्ति ज्ञान है और दीप की ज्योति भी नेत्र में प्रगट होती है, वह वृत्तिव्याप्तिज्ञान है। वे शिव फलव्याप्तिज्ञान द्वारा अप्राप्य हैं और वृत्तिव्याप्तिज्ञान द्वारा प्राप्य हैं। अतः हे गुणातीत शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

त्वदन्यद्वस्त्वेकं नहि भुवि समस्तं न भवतो
विभिन्नं विश्वात्मन्न च परममस्तीह भवतः।
ध्रुवं मायातीतस्त्वमसि सततं नात्र विषये
न ते कृत्यं सत्यं क्वचिदपि नमः सर्व शिव ते ॥३॥

ननु सगुणो निर्गुणस्साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जितः। सर्व एव शिवस्साक्षात्सच्चिदानन्दविग्रह इत्यादिस्मृत्याप्यतद्व्यावृत्तिरूपतया कथं त्वमेवासीत्याह—त्वदन्यदिति। एवन्तर्हि प्रथमं सहजं ब्रह्ममायया शून्यमागतम्। शून्यात्प्रकृतिरीशश्च ततस्तेभ्योऽभवज्ज-गदित्यादिस्मृत्या, तथा—धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणां। यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुष्विति भगीरथजाह्नवीसम्वा-देनापि हे सदाशिव! त्वदन्यद्वस्त्वेकमपि सजातीयादित्रिविधभेद-युक्तं नहि नास्तीत्यर्थः। अथ च हे विश्वात्मन्! शिवो गुरुः शिवो जीवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम्। शिव एव परं ब्रह्म शिवादन्यन्न

किञ्चन इति स्मृत्या भवतः सकाशाच्छाटीवत्तन्तुष्विति रीत्या विभिन्नं समस्तं जगन्नास्ति नच, हे ईश ! भवतः परमुत्कृष्टमपि नहि किञ्चिदस्तीत्यर्थः। तथा ध्रुवं यथा स्यात्तथा मायातीतस्त्वमसीति सततं नात्र विषये सच्चिदानन्दाख्ये प्रथमं सहजं ब्रह्मेत्यादिस्मृतिन्यायेन ते जगद्रूपं कृत्यरज्जुसर्पादिवन्मृगजलादिवच्च क्वचिदपि सत्यमस्तीति पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यत इत्यादिश्रुत्या सर्वरूपाय ते तुभ्यं हे शिव ! नमो नम इत्यर्थः ॥३॥

भावार्थः ॥

हे शिव ! आप से अन्य कोई न हुआ, न है और न होगा। निर्गुण-सगुण और सत्-असत् सब आप ही हैं। मायामय और माया से परे आप ही हैं। गुरु, ईश्वर, जीव, भाई, परब्रह्म, दृष्ट, अदृष्ट सब कुछ आप हैं। आप से भिन्न कुछ नहीं है। जैसे साड़ी में डोरा—डोरा के निकाल लेने से साड़ी का पता नहीं लगता कि क्या हुई, इसी तरह जगत् रूप जो भ्रम है सो रस्सी में सर्प तथा मृगजलवत् है। निश्चय करके आप माया से परे हैं और आप विश्वरूप भी हैं। अतः सर्वरूप जो आप हैं सो आप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

त्वयैवेमं लोकं निखिलममलं व्याप्य सततं
तथैवान्यं लोकं स्थितमनघ देवोत्तम विभो।
त्वयैवैतत्सृष्टं जगदखिलमीशान भगवन्
विलासोऽयं कश्चित्तव नमो मेध्य शिव ते ॥ ४ ॥

ननु कथं सर्वरूपस्य भवतः सकलकर्तृत्वं तवेत्यत्र दृष्टान्तं वक्तुमप्याह—त्वय्यैवेति। यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते चेत्यादिश्रुत्युक्तन्यायेन त्वय्यैवेमं भूरादिसप्तलोकं निखिलं सकलं यथा स्यात्तथैवामलरूपेण निर्विकारत्वेन व्याप्य सततं तिष्ठसीत्यर्थः। यथा लक्ष्मीं प्रति विष्णुवाक्यम्—

अहं शिवश्शिवश्चायं त्वञ्चापि शिव एव च।
सर्वं शिवमयं भद्रे शिवाद्भिन्नं न किञ्चन॥

इति स्मृत्या ज्ञातव्यम्। एवं हे ईशान! भगवँस्त्वय्यैवै तदखिलं जगत्सृष्टमिति मृगजलवत्तव विलासोऽयं 'यदिदं दृश्यते किञ्चित्तन्नास्ति किमपि ध्रुवं। यथा गन्धर्वनगरं यथा वारि मरुस्थले' इत्यादिस्मृतिन्यायेन कश्चित्तव मायाविलासोऽयमित्यर्थः।

ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवमुपासते॥

इति भारतस्मृत्या हे शिव! मेध्यरूपाय सकलपूज्याय
ते तुभ्यं नमः॥ ४॥

भावार्थः।

हे शिव! हम लोगों तथा चौदहों भुवनों को मृगजलवत् अथवा स्वप्नवत् आप ही ने उत्पन्न किया है। हे ईशान! जैसे मकरी अपने शरीर से बहुत सूत्र उत्पन्न करती है, पुनः अपने में सब खींच लेती है। उसी तरह यह अखिल जगत् आप की लीलामात्र है। हे पूज्य तथा मेध्य शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं॥४॥

जगत्सृष्टं पूर्वं यदभवदुमाकान्त सततं
त्वया लीलामात्रात्तदपि सकलं रचितमभूत् ।
तदेवाग्रे भालप्रकटनयनाद्भुतगणै-
र्ज्जगद्दग्ध्वा स्थास्यस्यज हर नमो वेद्य शिव ते ॥५॥

ननु ब्रह्मादींस्त्यक्त्वा कथं सदाशिवस्यैव सकलसृष्टिकर्तृत्वं सम्भवतीति सृष्टिनिदानत्वेनैव तद्दर्शयति जगत्सृष्टिमिति । तद्यथा—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु । हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीदित्यादि श्रुत्या, तथा—

तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् ।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम् ॥

इति भारतोक्त्या जगत्कर्तृत्वेन हे उमाकान्त ! जगत्सृष्टं पूर्वं यत्सततमभवत्तत्त्वया लीलामात्रादेव रचितमभूदित्यर्थः । एवं ब्राह्मश्च वैष्णवश्चेति रौद्रश्चेति लयस्त्रिधेत्यादियथोक्तस्मृतिन्यायेनाग्रे सृष्ट्युत्तरमन्ते सदाशिवस्य तव भालस्थप्रकटनयनाद्भुतगणैस्तदुद्गतैर्विस्फुलिङ्गैर्ज्जगद्दग्ध्वा त्वमेव स्थास्यसीति हे अजहर ! वेदवेद्य शिव एवंरूपाय भवते पुनः पुनर्नम इत्यर्थः ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

सृष्टि, पालन और संहार तीनों आप ही से होता है। रजोगुण से ब्रह्मा को उत्पन्न कर आप सृष्टि रचते हैं। सतोगुण से विष्णु को उत्पन्न

कर पालन करते और तमोगुण से रुद्र को उत्पन्न कर संहार करते हैं। ब्रह्मकल्प में आप ब्रह्मारूप से उत्पत्ति-स्थिति और संहार, विष्णु कल्प में विष्णु रूप से उत्पत्ति, स्थिति और संहार तथा रुद्रकल्प में रुद्ररूप से उत्पत्ति स्थिति और संहार करते हैं। अतः हे शिव! यह सब आपकी लीलामात्र का कार्य्य है। वस्तुतः आप ही सब उत्पन्न करके सबकी रक्षा करते हैं। अन्त में अपने तृतीय अग्नि नेत्र से सबको भस्म कर आप अकेले ही रह जाते हैं। अतः हे अजहर शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं॥ ५॥

विभूतीनामन्तो भवति भवतो भूतिविलस-
न्निजाकारः श्रीमन्न तव गुणसीमाप्यवगता।
अतद्व्यावृत्याद्धा त्वयि सकलवेदाश्च चकिता
भवन्त्येवासामप्रकृतिक नमो वर्य्य शिव ते ॥६॥

नन्वेतावतापि भवतो विभूतीनामन्तः परं पारं को विजानीयादित्याह—विभूतीनामिति। तत्रैवं सति हे विभूतिविलसंस्तव विभूतीनामन्तोऽवसानो भवतस्सकाशादेव सम्भवति नान्यस्मात्पादोस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीत्यादिश्रुतेरिति भावः। नन्वेतावता सगुणनिर्गुणयोः कीदृशो भेद इत्यत आह—निजाकार इति। तत्रेत्थं सति—

गुणो हि गुणिनो भिन्नो नासौ तस्य गुणो मतः।
अभिन्नोऽपि गुणो नास्य गुणो यद्वा गुणो न हि।

इति स्मृत्युक्तन्यायेन [illegible] नवेति चेत्कथं

त्वाम्वेदाः प्रवदन्तीत्याह—अतद्व्यावृत्त्येति। एवन्तर्हि मुखे नास्ति रूपम्वै चक्षुषीदं विभात्यहो। रज्जौ सर्प इवाभासे तयोरप्याप्यनुद्भवादिति स्मृतिन्यायेन तद्रूपस्य नामरूपात्मकस्य जगतोस्ति भाति प्रियञ्चैवंलक्षणे ब्रह्म तद्व्यावृत्यापि त्वयि सकलवेदा अद्धा साक्षाद्वक्तुञ्चकिता भवन्तो वेति, यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः। तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वर इति न्यायेनासमन्तात्साम्प्रकृतिकत्वेन विलीनप्रकृतिकत्वेन समाध्यानन्दवर्षणकर्तृत्वेन हे शिव! ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥६॥

भावार्थः।

हे शिव! आपकी विभूति का अन्त किसी ने नहीं पाया। वेद भी आपका माहात्म्य कहते समय चकित हो जाते हैं कि क्या करें—सगुण कहें अथवा निर्गुण। क्योंकि गुण गुणी से अभिन्न है। वह कभी अतद्व्यावृत्तिरूप से अर्थात् अज्ञातरूप से कहता है, कभी सगुण और कभी निर्गुण कहता है और कहते-कहते चुप हो जाता है। अतः हे वर्य! अर्थात् सर्वश्रेष्ठ शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥६॥

विराड् रूपं यत्ते सकलनिगमागोचरमभू-
　　त्तदेवेदं सत्यं भवति किमिदं भिन्नमथवा।
न जाने देवेश त्रिनयन सुराराध्यचरण
　　त्वमोङ्कारो वेदस्त्वमसि हि नमो घोर शिव ते ॥७॥

नन्वस्त्वेवं शिवमद्वैतं तुरीयं मन्यन्त इत्यादि श्रुतिवेद्यस्य [illegible]णः सदाशिव[illegible] [illegible]सर्वगता हता ते इत्युक्तन्यायेन

मनोवाचामगोचरत्वं तथापीह पृथ्वी पीठं जलाकाशं लिङ्गं नक्षत्रमालिका । पुष्पं चन्द्रार्कवह्निस्तु दीपं गर्ज्जो ध्वनिः स्मृत इति स्मृत्युक्तस्य तथा द्यौर्मूर्द्धा हि विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः । सोमसूर्य्याग्नयो नेत्रे दिशः श्रोत्रे महात्मनः । वक्त्राद्वै ब्राह्मणा जाता ब्रह्मा च भगवान्विभुः । इन्द्रविष्णुभुजाभ्यान्तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ॥ वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात्पिनाकिन इति लिङ्गपुराणस्मृत्या । विराड्रूपस्य सर्वथा गोचरत्वमेवास्तीति चेत्तत्राह—विराड्रूपमिति । तत्रैवंसति सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादित्यादि श्रुत्या शिरो हि मन्दिरम्प्रोक्तं जिह्वोपरि यतः शिवः । रन्ध्राज्जलामृतैः सिञ्चन् जिह्वा घंटाध्वनिर्यत इत्यादिस्मृत्या । तथा—

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता ।
सा सा माहेश्वरी शक्तिः स स सर्वो महेश्वरः ॥
इति रुद्रोपनिषच्छ्रुत्या—
सर्वं जगद्यस्य रूपं दिग्वासा तेन कीर्त्यते ।
गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्ति सः ॥
श्मशानञ्चापि संसारस्तद्वासी कृपयार्थिनां ।
वृषो धर्म इति प्रोक्तस्तमारूढो वृषी स्मृतः ॥
एवम्विधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः ।

इति स्मृत्यापि यत्ते विराड्रूपं सकलनिगमागोचरमभूदिति तदेवेदं सत्यमभवदसत्यम्वा किमिदं ततो भिन्नमथवा भिन्नम्वेति गुणो हि गुणिनो भिन्नमिति यथोक्तस्मृतिन्यायेन हे देव! सच्चिदचितो गुणगुणिनोर्वा भेदाभेदं निरूपयितुं वा न जाने इति महत्संकटम् । अथ च—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृत इति न्यायेन तथा ब्रह्मप्रणवसन्धानं नादो ज्योतिर्मयः शिवः। स्वयमाविर्भवेदात्मा मेघापायेऽंशुमानिवेति नादविन्दूपनिषच्छ्रुत्या ब्रह्मवीजत्वात्त्वमेवोंकारस्तद्वेद्यो वेदवेद्यश्च त्वमेवासीति हे शिव ! तुभ्यमघोररूपत्वात् अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य इति यजुर्वेदश्रुत्या तस्मै ते नम इत्यर्थः ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

हे शिव ! वेदों और पुराणों में जो आपका विराट् रूप वर्णित है कि आप के अनन्त सिर, अनन्त पैर और अनन्त नेत्र हैं। स्वर्ग आपका मस्तक, आकाश नाभि, सूर्य-चन्द्र-अग्नि नेत्र और दसों दिशायें कर्ण हैं। आपके मुख से ब्राह्मण जाति और ब्रह्मा हुए। बाहु से इन्द्र, विष्णु और क्षत्रिय जाति उत्पन्न हुई। आपके ऊरु से वैश्य और पैर से शूद्र जाति हुई। पुनः इस देह में सिर मन्दिर है, जिह्वा के ऊपर शिव हैं, ब्रह्मरन्ध्र से जल-धारा आती है जो मल-मूत्र का द्वार है। शिवालय शरीर है। इस जगत् में सब पुरुष शिव और सब स्त्री भगवती हैं। यह उपनिषद् कहती है और सब जगत् के रूप आप हैं। अतः आपको लोग दिगम्बर कहते हैं। तीनों गुण आपसे उत्पन्न होते हैं। अतः आप त्रिशूली हैं। आप धर्मरूप वृषभ पर चढ़ते हैं। अतः वृषी हैं। यह जगत् श्मशान है। उसमें आप [illegible]हते हैं। अतः श्मशानवासी कहाते हैं। गुण गुणी से भिन्न है अथवा [illegible]भिन्न है, इसका कोई निश्चय नहीं है। आप ॐकार रूप हैं। यह सब [illegible] विषय मन और [illegible] वेद आपको मन वचन से

अगाम्य कहता है । अतः हमारा चित्त सन्देह में पड़ा है कि आपको मैं क्या मानूँ ? आपको जगत्मय समझूँ या जगत् से भिन्न जानूँ । हे अघोर-रूप शिव ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

यदन्तस्तत्त्वज्ञा मुनिवरगणा रूपमनघम्
तवेदं सञ्चिन्त्य स्वमनसि सदा सङ्गविहिताः ।
यजुर्दिव्यानन्दन्तदिदमथवा किन्तु न तथा
किमेतज्जानेऽहं शरणद नमः सर्वशिव ते ॥८॥

ननु शिवमद्वैतं तुरीयं मन्यन्त इत्यादि श्रुतिवेद्यं योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिन इत्यादि स्मृतिवेद्यञ्च दुर्गमं किं स्वरूपमित्याह—यदन्त इति। एवन्तर्हि समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेदितस्यात्मनि यत्सुखं भवेदिति श्रुत्या तथा ईश्वरश्चेतनः कर्ता पुरुषः कारणं शिवः। ब्रह्मविष्णू शशी सूर्यः शक्रो देवाश्च सान्वयाः॥ सृज्यन्ते ग्रस्यते चैव तमोभूतमिदं जगत् ॥ अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वर इति भारतस्मृत्या यदन्तःकरणावच्छेदेन मुनिवरगणास्तत्त्वज्ञानरूपमनघम्पश्यन्ति तदेवेदञ्च यथोक्तलक्षणं परब्रह्माख्यं शिवमद्वैतं, इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु स इत्यादिस्मृतिन्यायेन स्वमनसि सदाशिवं सञ्चिंत्यासङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ततः पदन्तत्परिमार्गितव्यमित्यादिरीत्या सदा सङ्गविहिता मुनयो दिव्यानन्द यजुरिति तदिदं त्वमेव वाथवान्यो वेत्ति किंत्विति विस्मयेन न ज
हे शरणद ! सर्व[illegible]

भावार्थः ।

हे शिव ! आप अद्वैततुरीयावस्था में प्राप्त होने वाले शिव हैं—ऐसा श्रुति कहती है । योग के जानने वाले मुनि अन्तःकरण में आपका ध्यान कर और सङ्गरहित होकर दिव्यानन्द को प्राप्त होते हैं तो आप वही हैं अथवा उससे भिन्न हैं । यह मैं नहीं कह सकता । अतः अशरण को शरणदेने वाले हे शिव ! आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

यया शक्त्या सृष्ट्वा जगदथ च संरक्ष्य बहुधा
ततः संहृत्यैतन्निवससि तदाधारमथवा ।
इदं ते किं रूपं निरुपम न जाने हर विभो
निसर्गः को वाऽयंतमपि हि नमो भव्य शिव ते ॥९॥

नन्विह तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशतीत्यादिश्रुतिन्यायेन तन्तुपटयोरिव सृष्टिप्रवेशयोर्दुर्घटत्वं मन्यमानो विस्मयन्नाह— यया शक्त्येति । तत्रेत्थं सति, प्रथमं सहजं ब्रह्म मायया शून्यमागतमित्यादिश्रुतिन्यायेन तथा जाने त्वामीशं जगतो योनिबीजयोः । शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरं । त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथेति भागवतोक्त्या अघटितघटनया यया शक्त्या जगत्सृष्ट्वा अथ च पुनर्बहुधा संरक्ष्य पुनः संहृत्य चैतत्त्वं तद्रूपेण तदाधाररूपेण वेति अथवा इदं किन्ते रूपं निरुपममिति न जाने हे हर विभो ! [illegible]न्वयेन सर्गक्रमः को वा तमपि न जाने इति ते तुभ्यमगम्य-
भव्यरू[illegible] [illegible]

भावार्थः ।

हे शिव ! आप की एक शक्ति ब्रह्मा होकर सृष्टि करती, दूसरी शक्ति नारायण होकर पालन करती तथा तीसरी शक्ति रुद्र होकर संहार करती है । जगत् की रचना कर और उसी में प्रविष्ट होकर आप रहते हैं । आप का असली रूप कौन है सो मैं निश्चय करके नहीं जान सकता । अतः हे विभुहर ! हे भव्यरूप ! आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥

तवानन्तान्याहुः शुचिपरमरूपाणि निगमा-
स्तदन्तर्भूतं यत्सदसदनिरुक्तं त्विदमपि ।
निरुक्तं छन्दोभिर्निलयनमिदं चानिलयनम्
न विज्ञातं ज्ञातं सकृदपि नमो ज्येष्ठ शिव ते ॥ १० ॥

ननु कतिविधानि कीदृग्रूपाणि च तव स्वरूपाणीत्याह—तवानन्तनीति । तथा चेह—

भूरम्भांस्यनिलोऽनलोम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम् ।
तेनास्यश्रवणात्तदर्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तना-
त्सिध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्य्यमव्याहतम् ॥

इत्यादिस्मृत्या शुचिपरमरूपाणि तवानन्त्यान्यन्यान्यपि निगमान्याहुरित्यर्थः । एवं अग्निर्मूर्धा चक्षूंषि चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहमित्यादि श्रुतिस्मृतिवेद्यत्वेन निगमास्तदन्तर्भूतमप्राहुरिति पूर्वेणान्वयः, एवं यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः। तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वर इत्यादिश्रुत्या तदन्तर्भूतं यत्सदसन्निरुक्तकार्य्यकारणव्यतिरिक्तं त्विदमपि शिवमद्वैतं तुरीयं छन्दोभिरुक्तं कथितमित्यर्थः। तदपि निलयनं सर्वाधारभूतं तथा सर्वरूपत्वादनिलयनमिति रज्जुसर्पवन्मृगजलादिवच्चेति सकृदपि निषेधशेषत्वेनाप्यविज्ञातं भवतीति, नमो ज्येष्ठाय च नमः श्रेष्ठाय च इति श्रुत्या ज्येष्ठाय सर्वश्रेष्ठाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥ १० ॥

भावार्थः।

हे शिव! आप का रूप अनन्त है। पृथ्वी अप, तेज, वायु और आकाशरूप हैं। विराट् रूप शरीर में आप जीवात्मारूप हैं। सबके आधारभूत आप हैं। आप का आधार कोई नहीं है। आप सबको जानते हैं और किसी ने भी आपको नहीं जाना। एवम्भूत सर्वश्रेष्ठ और ज्येष्ठरूप आप को मैं नमस्कार करता हूं॥ १० ॥

तवाभूत्सत्यञ्चानृतमपि च सत्यानृतमभू-
हतं सत्यं सत्यमृतमुभयथा रूपसकलम्।
यतः सत्यं सत्यं सममपि समस्तं तव विभो
ऋतं सत्यं सत्यमृतमपि नमो रुद्र शिव ते ॥ ११॥

ननु मुखे नामास्ति रूपस्वै चक्षुषीदं कुतो द्वयमित्यादिस्मृत्या [illegible] जगद् भासते

इत्याह—तवाभूदिति । तत्रैवं सति रज्जौ सर्प इवानृतमपि जगत् तव त्वन्तस्सत्यममृतं शिवरूपमेवाभूदित्यर्थः । यथोक्तम्—नामरूपात्मकं विश्वं शिवरूपं न संशयः । दृश्यन्ते भगलिङ्गांकास्तस्मान्माहेश्वरी प्रजा । इति स्मृत्या अपरञ्च—एकैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽपीति स्मृतिन्यायेन ऋतं पृथिव्यादिकमिदमसत्यमपि सत्यमिव प्रातिभासिकसत्तया भासते । एवं तत्त्वदर्शिनः सत्यमप्यनृतं जगदुभयथा रूपं ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च यथोक्तन्यायेनोभयथा सकलं भासत इत्यर्थः । एवं "यस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इत्यादि हे विभो ! यतस्तवाभाससत्तया त्वसत्यमपि जगद्वस्तुतः समस्तं सततञ्च सर्व्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादि श्रुतेरधिष्ठानसत्तया समस्तमेवावगतं भवतीति भावः । एवमाभाससत्तया ऋतं जगत्सत्यमिव भासते अथ च तदेव जगत्सत्यानृतरूपेण त्वत्त एव भासत इति महद्भयं वज्रमुद्यन्त इत्यादि श्रुतेस्तथा—रोदयत्येव यः सर्वान् स्वस्मिन्भक्तिविवर्जितानिति स्मृत्या रुद्राकारतया वरिष्ठत्वाद्धेसदाशिव ! ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥२१॥

भावार्थः ।

हे शिव ! नामरूपात्मक जो जगत् है सो सब मिथ्या है । परन्तु आपकी सत्ता से सत्य के सदृश भासमान होता है । जैसे रस्सी में सर्प । ज्ञानी के लिये सर्वत्र आप हैं और अज्ञानी के लिये जगत् है । आपसे उत्पन्न हुआ जगत् आप ही की सत्तासे सत्यवत् भासमान होता है और जहां आपकी सत्ता अज्ञान वश न हो, वह सत्य भी असत्य ही है । अपनी भक्ति से विमुख जनों को रुलानेवाले हे रुद्र ! हे शिव ! आपको नमस्कार है ॥

न वामेयामेयं यद्पि च नमेयं विरचितं
न वामेयामेयं रचितमपि मेयं विरचितुम्।
नवाऽमेयं मेयं चेन्न खलु परमेयं परमयं
न मेयं नामेयं वरमपि नमो देव शिव ते ॥ १२

नन्विह न च श्रोत्रस्य शब्देन सम्बन्धस्तस्य कारणन्तस्मिन्नन्यो-न्यगे धर्मे सत्यसावप्यवारित इत्यादिस्मृतिन्यायेन तावच्छब्दाश्रय-त्वेन शब्दस्य तद्वृत्तित्वेन च शब्दत्वस्य सिद्धान्योन्याश्रयापत्तौ पदार्थमात्रस्यासिद्ध्यापत्तावशिष्यमाणं सर्व्वं खल्विदं शिवमद्वैतं ब्रह्मेत्याह—न वेति। एवन्तर्हि यद्यपि गुणो हि गुणिनो भिन्नो नहि वस्य गुणो भवेदित्यादि यथोक्तश्रुतिस्मृतिन्यायेनाकाशादिपदार्थ-मात्रासिद्धापत्तौ प्रमाणगम्यत्वाभावेनाप्रमेयत्वापत्तिः। मेयामेययो-श्च विरुद्धत्वात्तदसम्भवापत्तिश्च तथापि तवाप्रमेयं विरचितमि-त्यर्थः। तत्र यद्यपि मेयं मेयपरचिन्तनं भवितुमर्हति। तथाप्यघटित-तघटनाया गम्यशक्त्या परम्विरचितुमुद्यत इत्यर्थः। तत्र यद्यप्यमे-मेयञ्चेद्विरुद्धधर्मत्वान्न वा भवितुमर्हति तर्हि परमेयं परब्रह्मस्व-रूपं परमञ्च न खलु परतो मेयं भविष्यतीत्यर्थः। तत्रैवं सति, विज्ञा-तारमेके विजानीयादित्यादिश्रुत्या न प्रज्ञं नाप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञ-मित्यादिश्रुत्या च वरं श्रेष्ठमपि न प्रमेयं नामेयं तथापि, ब्रह्मण्यज्ञान-नाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षितेति स्मृतिन्यायेन, शिवो देवो द्विजो ब्रह्म क्षत्रियस्तु हरिःस्मृत इत्यादि स्मृतिन्यायेन च देवाय महादेवाय तुभ्यं नम इत्यर्थः। ...वेदा... । तव...

भावार्थः ।

हे महादेव ! आकाशादि पञ्चभूत परिमित हैं। आप अप्रमेय हैं—प्रमाण रहित हैं। परन्तु जगन्मय होने से आप भी मेय अर्थात् परिमित हुए। वस्तुतः आप मेयामेय तथा परिमित अपरिमित दोनों से रहित हैं और दोनों के भीतर-बाहर रहने वाले हैं। अतः हे देववर ! आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥

न वाहाराहारं विहितमपि हारं विहरसे
नवाहारं हारी हरसि हर हारन्न हरसि ।
नवाहाराहारं परतरविहारं परतरं
परं जाने जाने नहि खलु नमो विश्व शिव ते ॥१३॥

नन्विह सताञ्च न निषेधोस्ति सोऽसत्सु च न विद्यते जगत्यनेन न्यायेन नव्यर्थः प्रलयंगत इत्यादिस्मृत्या यदि सदाशिवातिरिक्तं सर्वं जगन्नास्त्येव तर्हि नेह नानेत्यादि किं निषिध्यत इत्याह—

नवेति। तथा चेह, भेदे सत्यपरस्तर्को भेदमायापरोऽपरः। भेदे सत्यपरस्तर्को ह्यसन्वेदविरोधतः॥ एष विज्ञाननियमान्नेह नानेति च श्रुतेरित्यादिस्मृतेश्चासत्यस्यापि जगवः सत्यत्वभ्रमस्यैव नेह नानेत्यनेन निवृत्तिर्न्नतु सत्यस्य जगतो निवृत्तिरित्यभिप्रायेण न वा न चाहारं ह्रियमाणहारं विहितमपि भवितुमसि त्वं हारमपि हरं मत्वा ब्राह्मश्च वैष्णवश्चेति रौद्रश्चेति लयत्रिधेति स्मृतिन्यायेन [illegible]

चाहारं कृत्वा हारी भवितुमर्हसीति हे हर ! हारं रज्जुसर्पवदवि
ध्रियमाणमेव हरसि वस्तुगत्या न हरसीत्यर्थः। एवं सति–ब्राह्मादय-
स्सुरगणाः कथमत्र सन्ति स्वर्गादयो वसतयः कथमत्र सन्ति।
यद्येकरूपममलं परमार्थतत्त्वमित्यादिस्मृतिन्यायेन नवाहारं
त्वयि सम्भवति किन्तु ब्रह्मादीनामिह लोकात्परतरम्विहारं
ततोऽपि परतरं विहारं यत्परं पारं तदेव समाधिनिर्धूतमलस्य
चेतस इत्यादिरीत्या—ब्रह्मादिसुरनाथानां लोकेष्वपि स दुर्लभः
य आनन्दः स आनन्दः स लोकः पारमेश्वर॥ इति स्कान्दस्मृत्य
नहि खलु जाने इति, हे शिव ! विश्वरूपाय ते तुभ्यं न
इत्यर्थः॥ १३॥

भावार्थः

हे हर ! नवाहारा हारं अर्थात् बंधनरूप हार को आप नहीं हरण करते
क्योंकि वस्तुतः बन्धन ही नहीं है। यह आप की लीला मात्र है। स
लोकों के विहार से भी परतर विहार आप के लोक में है। वेद की श्रु
कहती है कि (ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या) एक ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या
तो वस्तुतः जब जगत् कुछ है ही नहीं, तब उसको मिथ्या क्यों कहा
यहां पर ब्रह्मज्ञानियों ने ऐसा विचार किया है कि माया से ब्रह्म में
तुमको जगत्रूप भ्रम है सो मिथ्या है, जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम। रस्सी
सर्प आया नहीं, न गया। सर्परूप जो तुम्हारा भ्रम है, उसका निषेध है
हे विश्वरूप शिव ! वस्तुतः आप क्या हैं सो मैं नहीं जानता। जो ई

तदेतत्तत्त्वन्ते सकलमपि तत्त्वेन विदितं
न तत्तत्त्वं तत्त्वं विदितमपि तत्त्वेन विदितम् ।
न चैतत्तत्त्वञ्चेन्नियतमपि तत्त्वं किमु भवे-
न्न ते तत्त्वं तत्त्वं न तदपि च नमो वेद्य शिव ते ॥ १४ ॥

ननु किमिदं किमस्य रूपं कथमिदमभूदस्य को हेतुः, इति न कदापि चिन्त्यचिन्त्यं धीमतां विश्वमित्यादि स्मृत्या सर्वस्य प्रपञ्चजातस्य जडरूपत्वात्कथमिह चैतन्यं विभाति इत्याह—यदेतदिति । एवन्तर्हि यस्य भासा सर्वमिदं विभातीत्यादिश्रुतेः । येन शब्दं रसं रूपं गन्धं जानासि राघव । तमात्मानं परं ब्रह्म जानीहि परमेश्वरमित्यादि-स्मृतेश्च यदेतच्छब्दस्पर्शादिविषयकं तत्त्वज्ञानं तत्सर्वं परब्रह्म-चैतन्याभासत्वेनैव विदितमित्यर्थः । नन्वस्तु शब्दस्पर्शादिविषयक-ज्ञानम्परब्रह्मैव, परन्तु शब्दाश्रयत्वेनाकाशादीनां पञ्चतत्त्वानां ब्रह्मातिरिक्तत्वन्तु भवत्येवेति नेत्याह—न चैतत्तत्त्वमिति । तथा चेह तथैव नम इत्येतत्किं नाम भवतो मतं न च शब्दगुणत्वाद्धै नास्य वन्ध्यासुताद्भिदेत्यादि पूर्वोक्तरीत्या न चैतदाकाशादिकं तत्त्वञ्चेत्तर्हि नियतत्वं किमु भवेदिति पर्य्यवसिते तवापि तत्त्वं निर्धर्मकत्वात्तदपि न जाने इति वेदवेद्यरूपाय शिवाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥ १४ ॥

भावार्थः

हे शिव ! यह जगत् कहां से आया और इसका रूप कौन है और आकरवत् जो पांच ...

तत्त्वों से विदित है। कोई ऐसा तत्त्व नहीं है, जो आपसे पृथक् हो। वस्तुतः सब तत्त्वरूप आप का तत्त्व है और सब तत्त्व आपके भीतर हैं। अतः सब तत्त्वों से विहित असरवरत्व आपको है। हे वेद्यरूप शिव ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १४ ॥

इदं रूपं रूपं सदसदमलं रूपमिति चेन्न
जाने रूपं तत्तरतमविभिन्नं परतरम्।
यतो नान्यद्रूपं नियतमपि वेदैर्न्निगदितं
न जाने सर्वात्मन्कचिदपि नमोऽनन्त शिव ते ॥ १५ ॥

ननु यदि सर्व्वं सर्वत्र सर्व्वदेति न्यायेन सर्व्वं खल्विदं ब्रह्मैकमस्ति चेत्किमिदं विश्वरूपं विभातीति तत्राह—इदं रूपमिति। तत्रेत्थं सति इदं यदि सदसतोः कार्य्यकारणयोर्जगतो रूपमेव रूपञ्चेत्तर्ह्यमलम्ब्रह्मस्वरूपं किमिति चेन्न जाने तरतमविभिन्नं परतरं रूपं किमस्तीत्यर्थः। ननु तर्हि केन प्रबलेन रूपेणेदं जगद्रूपवद्भातीति चेत्तत्राह—यत इति। एवं सति-वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। तथा वशी सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्चेत्यादि श्रुत्या तथा योग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोस्त्व- [illegible]ये इति ऋग्वेदश्रुत्या, यतो भवतो नान्यत्पृथग्रूपं नियतमपि [illegible]र्निगदितमपि तथापि न जाने हेसर्वात्मन्! कचिदपि अनन्त-

भावार्थः ।

हे शिव ! आपका यह रूप सत् असत् दोनों रूप में है। दोनों से विहीन परतर परात्पर रूपको मैं नहीं जानता कि किस रूप में है। और यह वेद भी आपको नहीं जानता। सर्वात्मा होकर आप सब रूपों में वर्तमान हैं। सब रूपों से परे विलक्षण रूप आपका है और आप अनन्त रूप हैं। अतः आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १५ ॥

महद्भूतं भूतं भवति च न भूतं तव विभो
यदा भूतं भूतं किमु न भवतो भूतविषयैः ।
यदा भूतं भू तं भवति न च भूतं हि भवितुं
मभाभूतं भूतं भवति हि नमो ज्येष्ठ शिव ते॥१६॥

ननु यथा सतो जनिर्नैवमसवोपि जनिर्न च, जन्यत्वमेव जन्यस्यानिर्व्वाच्यत्वं समर्प्य यद्वयमित्यादि स्मृत्युक्तयायेन विरुद्धधर्मत्वात्कथं महद्भूतं प्रकृत्यादिजगद्रूपं भूतमुत्पन्नम्भवति अथ च, यस्त्वदतिरिक्तं हेविभो ! भूतमुत्पन्नं यथोक्तरीत्या विरुद्ध-धर्मत्वान्न च नहि सम्भवतीति यदा च भूतं महदादिप्रकृतिजातं वमुत्पल्नं अतएव सद्रूपञ्चेत्तदा भवतो भूतविषयैश्च किमु विशेषः कोपि नेत्यर्थः। यदा भूतं महदादिकं सर्व्वं भूतमुत्पन्नम्भवति तदा यथोक्तरीत्या विरुद्धधर्मत्वान्न च नहि भूतं भवितुमर्हती त्यर्थः। यतस्सर्व्वं सर्व्वत्र सर्वदेति न्यायेन सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादि श्रुत्या च सर्वं ...

नमः श्रेष्ठाय चेत्यादि श्रुत्या ज्येष्ठरूपाय शिवाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥ १६ ॥

भावार्थः ।

हे शिव ! आप महदादि पञ्चभूत सम्भूत हैं तथा पञ्चभूत आप ही से सम्भूत हैं और पञ्चभूतों के विषय में आप हैं तथा मृगजलवत् पञ्चभूतों से परे प्रभाभूत आप हैं। सर्वभूतमय और सर्वभूतों से परे ज्येष्ठश्रेष्ठरूपमय आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥

वशीभूता भूतास्सततमपि भूतात्मकतया
न ते भूता भूतास्तव यदपि भूता विभुतया।
यतो भूता भूतास्तव तु नहि भूतात्मकतया
न वा भूता भूताःक्वचिदपि नमो भूत शिव ते॥ १७॥

ननु ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं त्वद्वशीभूतं जगत्त्रयं। केनाविनाशित किम्वा स्वरूपं तद्विभावयेत्याशङ्काम्परिहरन्नाह—वशीभूता इति एवन्तर्हि, "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदयति सूर्य्यः भयादग्निश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" इति श्रुत्या तथा, यत्प्रेरितः प्रकुरुते जन्मनानाप्रकारकमित्यादि स्मृत्या सततमिति निश्चयेन भूता प्राणिनस्त्वद्वशीभूता एवेत्यर्थः, वस्तुतस्तु—धारयिष्यति ते वेगं रुद्र त्वात्मा शरीरिणां। यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं साटीव तन्तुष्वित्या दिस्मृतिन्यायेन भूतात्मकस्यैव त्वं तिष्ठसीति न ते भूताः प्राणिनः [illegible]

भासन्ते इत्यर्थः। यथोक्तम्–जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः। पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिव इति श्रुत्या ज्ञातव्यम्. यतश्च तव त्वन्तस्तु भूताः प्राणिनो भूवा रज्जुसर्पादिवन्मृगजलादिवच्च जाता अपि नहि भूतात्मकतया त्वं निस्सङ्गत्वाद्भासत इति न-वा भूताः प्राणिनो भूतात्मकतया क्वचिदपि वस्तुतो भासन्त इति हे शिव ! तवाधिष्ठानसत्तया भूतरूपाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥१७॥

भावार्थः ।

हे भूतनाथ शिव ! पांचों भूत आपके वशीभूत हैं। आप भूतमय हैं और भूतों से रहित तथा भूतों से परे हैं। सर्वभूतमय होने से आप भूतात्मा हैं। मन-वचन के अगम्य होने से आप अभूत हैं और कदाचित् भूतरूप भी हैं। अतः हे भूतरूप शिव ! आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥

न ते माया माया सततमपि मायामयतया
ध्रुवं माया माया त्वयि वर न मायामयमपि ।
यदा मायामाया त्वयि न खलु मायामयतया
न माया माया वा परमयमतस्ते शिव नमः ॥१८॥

नन्वेवमपि मायान्तु प्रकृतिम्विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतेन व्याप्तं सर्वमिदं जगदित्यादिश्रुत्या परब्रह्मणस्सदा शिवस्य मायासबलत्वमेव किं न स्यादिति चेन्नेत्याह—न मायेति। तत्रेदं...

यथा गन्धर्वनगरं यथा वारि मरुस्थले इत्यादिस्मृत्या ते तव सदाशिवस्य वस्तुतो मायाभासो नास्त्येव तथापि मायामयतया इत्‌ त्वं सततमपि भाससे इत्यर्थः । वस्तुतस्तु ध्रुवं यथा स्यात्तथा हेवर । इ सर्वश्रेष्ठ ! त्वयि विषये या माया सा भासमानाऽस्त्येवेति कृत्वा त्व न मायामयमपि त्वमसीत्यर्थः। तत्रैवं सति यदा या माया सा भस्स नास्त्येव तर्हि नहि खल्विति निश्चयेन मायामयतया तव भानमिति एवं या माया सा नास्त्येव तर्हि सदाशिवे त्वयि परमयत्वं स्वतःद्धि सिद्धमिति ते तुभ्यं हेशिव नम इत्यर्थः ॥ १८ ॥

भावार्थः ।

माया प्रकृति है, मायी महेश्वर हैं और उन्हीं दोनों से सारा जगत् व्याप्त है। इस स्मृतिप्रमाण से आप मायामय हैं। इस पर विष्णु भगवान् कहते हैं कि 'न ते माया' निरंतर माया में रत रहते हुए भी आप में माया नहीं है। आप में माया है, यह जो भ्रम है सो रज्जुसर्पवत् अथवा मृग जलवत् है। आप जो दृष्टिगोचर होते हैं सो जैसे स्वप्न में अनेक प्रकार की वस्तु देखने में आती है, जाग जाने पर कुछ नहीं रहता। उसी तरह आप में माया का आभास है। अतः हे शिव ! आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥

यदन्तस्सर्ववेद्यं विदितमपि वेदैर्निगदितं
न वेद्यं वेद्यञ्चेन्नियतमपि वेद्यं न विदितम् ।
इदं वेद्यं विदितमपि वेदान्तनिकरैः
[illegible] शिव ते ॥ १९ ॥

ननु त्वद्यात्रया सर्वगताहता ते ध्यानेन चेतः परताहता ते इत्यादिस्मृतिन्यायेन शिवज्ञानस्य दुर्घटत्वं मन्वान आह—यदन्त इति। एवन्तर्हि 'ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता। फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निराकृतमित्यादिस्मृत्या वृत्तिव्याप्त्या यदन्तःभरसंवेद्यमिति। विदितमपि फलव्याप्त्या वेदैर्न्न विदितमित्यर्थः। एवं सति, न प्रज्ञं नाप्रज्ञं प्रज्ञानघनमित्यादिश्रुतेर्न्न वेद्यं वेद्यञ्चेतः द्विज्ञातारमेकेन विजानीयादिति श्रुतेर्न्नियतमपि परब्रह्मवेद्यं, वस्तुतो न विदितमित्यर्थः। तत्रैवंसति साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्मेत्यादिश्रुतेस्तदेवेदं विदितमपि वेदान्तनिकरैर्वेद्यमिति रीत्या यदा त्वं वेद्यं ब्रह्म वेद्यञ्चेत्तेन तं गदतीति जगदिति हे शिव अतर्क्यरूपाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥१६॥

भावार्थः ।

आपको यात्रा से प्रसन्न करें तो सर्वज्ञत्व की हानि होती है। यदि ध्यान और स्तुति से प्रसन्न करें तो व्यापकत्व की हानि होती है। अतः अन्तःकरण से आप वेद्य हैं, ऐसा वेद कहता है। परन्तु वेद्य-अवेद्य दोनों से रहित आपको वेदान्त कहता है। अष्टाङ्ग योग द्वारा ध्यान से सब योगी आपको वेद्य कहते हैं। इस वेद्य-अवेद्य के झगड़े में पड़कर हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और तर्क नष्ट हो जाते हैं। अतः हे अतर्क्य शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं॥ १९॥

शिवं शैवं भावं शिवमपि शिवाकारमशिवं

शिवं शान्तं मत्वा शिवपरमतत्त्वं शिवमयं
न जाने तत्तत्त्वं शिवमति नमो भेद्य शिवते ॥ २०॥

नन्वशिवस्तु शिवो न स्याच्छिवो वै त्वशिवो नहि। तस्माच्छैवे
रूपेण शिवो वेदैर्निगद्यते ॥ इति स्मृत्या शिवस्य सर्वव्यापकत्वमाह
शिवं शैवं भावमिति। शिशब्दो मङ्गलार्थस्तु वकारो दातृवाचक
मङ्गलानाम्प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः ॥ इति स्मृत्या तथा स
शिवमयं जगत्, शिवादन्यं न किञ्चन इति स्मृत्यापि सर्वे
उच्चावचेषु शुद्धाशुद्धेषु सर्वभेदभिन्नेषु जगद्वस्तुषु व्याप्याधिति
तस्तुभ्यं नमो नम इत्यर्थः। शिवं शान्तमिति। परात्परतरं मत
शिवं शान्तं सनातनं। सर्वं जगद्यस्य रूपं शिवाद्भिन्नं न किञ्चन इ
स्मृत्या परतत्वं योगिभिर्ध्येयमिति सिद्धम्। तथा पाद्मे लक्ष्मीम्प्र
विष्णुवाक्यम्—अहं शिवः शिवश्चायं त्वञ्चापि शिव एव च। स
शिवमयं भद्रे शिवाद्भिन्नं न किञ्चन॥ इति स्मृत्या परात्पर
शान्तं सर्वजगन्मयं शिवं मत्वा भेद्यरूपाय नमो नम इत्यर्थः ॥ २

भावार्थः।

अशिव शिव नहीं और शिव अशिव नहीं है। जिनको वेद शि
शांत और परमतत्त्व कहते हैं। शुद्धाशुद्ध, उच्च-नीच सबमें व्याप
होकर आप रहते हैं। पद्मपुराण में लक्ष्मी के प्रति विष्णु भगवान् का
वचन है कि हम शिव, तुम शिव और यह जगत् भी शिव है। शिवसे अ
कुछ नहीं है 'शि' मंगल वाचक है 'व' देने के अर्थ में है। अर्थात् मं
[illegible] वस्तु नहीं है, जो

से भिन्न हो । अतः सब भेदाभेद वस्तुओं में व्यापक हे शिव ! भेद्यरूप आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥ २० ॥

यद्ज्ञात्वा तत्त्वं सकलमपि संसारपतितं
जगज्जन्माद्यर्त्तिं वहति सततं दुःखनिलयम् ।
यदेतद्विज्ञात्वैव वहति च निवृत्तिम्परतरां
न जाने तत्तत्त्वं परमिति नमो रेष्य शिव ते ॥ २१ ॥

तथा च शिवं अज्ञात्वा जन्ममरणादिरूपं दुःखं न त्यजति, तदुक्तम्—यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः। तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यतीति स्मृत्योक्तमर्थमाह—यदज्ञात्वेति । शिवं अज्ञात्वा जन्ममरणादिरूपं दुःखं वहति तथा तद्ज्ञानेन परतरां शान्ति लभते यथा, विना शिवप्रसादं हि भ्रान्तिः कापि न नश्यति । अतएव भ्रमन्त्येते भ्रमराशिशववर्जिताः॥ इति स्मृत्या तथा यदक्षरम्परं ब्रह्म शिवं शान्तं निरामयमित्यादिश्रुत्या अवगंतव्यम् । संसारेस्मिन्किमपि वस्तुजातं शिवादन्यन्नास्ति सर्वं शिवमयं जगदित्यादि स्मृत्या हे रेष्य शिव ! तुभ्यं नमः इत्यर्थः ॥ २१ ॥

भावार्थः ।

चामसे आकाश को मढ़देना सम्भव है, परन्तु बिना आप को जाने दुःख का अन्त होना सम्भव नहीं है । इस स्मृति का भावार्थ कहते हैं कि जिस परम तत्त्वको नहीं जानने से यह जगत् जन्म-मरणादि अनेक दुःखों को बार बार सहन करता है ...

को प्राप्त होते हैं। जैसे कि स्मृति में कहा है कि बिना शिव के प्रसाद
भ्रान्ति नष्ट नहीं होती। अतः शिव में भ्रम नहीं है। इस जगत् में कोई
ऐसी नहीं है जो आपसे भिन्न हो। सब में सूक्ष्म रेखारूप से आप वर्त
हैं। अतः हे रेष्य शिव! आप को मैं नमस्कार करता हूं॥ २१॥

तदेवेदं रूपं निगमविषयं मङ्गलकरं
न दृष्टं केनापि ध्रुवमिति विजाने शिव विभो
ततोऽस्मिंस्ते शम्भो नहि मम विषादोऽप्यविकृतिः
प्रयत्नाल्लाभेस्मिन्न किमपि नमः पूर्ण शिव ते ॥२२॥

ननु वेदवेद्ये शिवैकत्वे ब्रह्मेत्याहुर्नपुंसकमित्यादिस्मृत्या
मङ्गलकर्तृत्वं शिवस्यैवेत्यत आह—तदेवेति। कीटो भ्रमरयो
भ्रमरो भवति ध्रुवम्। मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चितमि
स्मृत्या तथा च नामरूपात्मकं सर्वं शिवशक्त्यात्मकं जगदित्या
स्मृत्यापि सर्वविश्वमयस्त्वमेवासि परन्तु यथार्थतया तव
निश्चयेन कोपि न जानाति इत्यहं जाने, नभः परं स्वात्मसमम
तत्रिणो न पारमीयुर्गतिमस्तु तद्वदित्यर्थो विचार्य्य मम चि
विषादो नास्ति। यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृत्तवेति स्मृत्या निषेधमुखे
वेदोपि कथयति—हे पूर्णरूपशिव ते तुभ्यं नम इत्यर्थः॥ २२॥

भावार्थः।

वेद से वेद्य और सब प्रकार का मंगल देने वाला आपका रूप है, पर
के रूप को ... तदेव ... और आपकी महि

पार कोई नहीं गया। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, परन्तु आकाश का अन्त किसी ने नहीं पाया, अपने-अपने बल के माफिक उड़ते हैं। उसी तरह आप का अन्त किसी ने नहीं पाया। अतः हमारे चित्त में विषाद नहीं है। जब किसी ने आप का रूप निश्चय रूप से नहीं जाना और मैंने भी नहीं जाना तो आपके रूप को जानने का जो साहस मैं करता हूं, मेरे इस अपराध को आप क्षमा करें। हे पूर्णरूप शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं॥ २२॥

तवाकर्णं गूढं पदपरमचक्षुःश्रुतिपरं
तदेवाघस्सन्नयनपदवीं नात्र तनुते।
कदाचित्किञ्चिद्वा स्फुरतु कृपया चेतसि तव
स्फुरद्रूपं भव्यं भव हर नमोऽनाद्य शिव ते॥२३॥

तथा च-पिता यः सर्वलोकानां ब्रह्मविष्ण्वोश्च यः पिता। स शिवः सर्वलोकानां कृपाङ्कके तयोः परि॥ इति स्कान्दस्मृत्या सर्वरूपत्वं शिवस्यैवेत्यत आह-तवाकर्णमिति। ननु यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतं यच्चक्षुषा न पश्यति, येन चक्षूंषि पश्यति इत्यादि श्रुत्या यत्किञ्चित्कदाचिद्वा चित्ते स्फुरति दृष्टिपथमायाति तत्सर्वं तव कृपया अतो हे अनादिशिव! तुभ्यं नमो नम इत्यर्थः॥२३॥

भावार्थः।

हे शिव! आपका रूप बहुत गूढ़ है। जो वचन, मन और चक्षु आदि इन्द्रियों के विषय में नहीं [illegible] से भी परे है

उसका चक्षु आदि इन्द्रियों के विषय में आना असम्भव है, पर यदि कचित् चित्त में आपका भव्य रूप भासमान हो जाता है आपकी कृपा है। हे भव! हे हर! हे अनादि शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥

त्वमिन्दुर्भानुर्वा हुतभुगसि वायुश्च सलिलं
त्वमेवाकाशोऽसि क्षितिरसि तथात्मासि भगवन्।
ततस्सर्वाकारस्स भवमसि भवतो भिन्नमथवा
नतत्सत्यं सत्यं त्रिनयन नमोऽनन्त शिव ते ॥२४

ननु सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिंगे योर्चयति प्रभुमित्यादि स्मृ शिवस्य सर्वरूपत्वं दर्शयतीत्याह—त्वमिन्दुरिति। एवन्तर्हि सो प्रसादलब्धस्य सोम इत्येव धीमवः। उमया सहितो देवः सं इत्यभिधीयत॥ इति स्मृत्या तथा आदित्यः समभूत्सोमात्सोमाद्वि प्रजायते, इति स्मृत्यापि च, अपरश्च—नास्त्वमेति न चोदेति न शान् न विकारवान्। भानुभर्ग इति स्मृत इति स्मृत्या तद्रूपत्वं शिवस्य वे बोध्यम्, सूर्य्यचन्द्रयोरुत्पत्तिकर्तृत्वं तथा रुद्रतेजःसमुद्भूतं द्विमूर्ध द्विनासिकमिति रौद्रकल्पोक्त्या अग्निरूपत्वं अपरञ्च पञ्चभूतात्म विश्वं शिवरूपन्न संशय इति स्मृत्या पञ्चभूतात्मकत्वं यद्भूतं भव भविष्यति वा तत्सर्वं शिवरूपं तद्भिन्नं यद्वस्तु तत्सत्यमपि असत् स्तुति हेति [illegible] नमो नम इत्यर्थः ॥ २४

भावार्थः ।

हे शिव ! सूर्य्य-चन्द्रमा की उत्पत्ति करने वाले तथा सूर्य्य-चन्द्र रूप आप हैं। उमा के साथ शिव को सोम कहते हैं। सोम से सूर्य्य-चन्द्र की उत्पत्ति हुई है। इस स्मृति के प्रमाण से आप सूर्य्यचन्द्र रूप हैं। यह सूर्य्य अस्त होता है, उदय होता है और ग्रहणादि दोषों से मलीन होता रहता है, परन्तु आप सर्वदा एक सदृश रहते हैं। अग्नि भी रुद्र-रूप है। वायु, जल, आकाश और पृथ्वी आदि सब रूप में आप वर्तमान हैं। आप जीवात्मारूप भी हैं। मैं सत्य सत्य कहता हूं कि आपसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। अतः हे त्रिनयन शिव ! हे अनन्तरूप ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

विधुं धत्सेनित्यं शिरसि मृदुकण्ठे च गरलं
नवं नागाहारं भसितममलं भासुरतनौ ।
करे शूलं भाले ज्वलनमनिशं तत्किल इति
न तत्त्वं जानेऽहं भव हर नमः कुप्य शिव ते ॥२५॥

अपरमपि तस्य व्यापकत्वं दर्शयति–चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत, श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायतेति श्रुत्या तथा वक्त्राद्वै ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा। वैश्याश्चोरु-प्रदेशात्तु शूद्राः पादात्पिनाकिन इति स्मृत्यापि एवं नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे, इति श्रुत्यर्थं [illegible] विधुं धत्से इति तथा च शिवस्य [illegible]

विधुं चन्द्रमसं, धत्से दधार। लीलया कंण्ठे कस्तूरीकणवन्मुने, इत्यादि स्मृत्या नीलग्रीवः अथवा, नीलमविद्यारूपं तमः गृणातीति नीलग्रीवः तथा कदाचिदीशपादादाम्बुनिम्मील्यपरिमेलतः। पवनः पन्नगेशेन निपीतः पुण्यकारणात् ॥ तेन, विश्वम्भराभाराधुरीणत्वमवाप्तवान्, भोगीश्वरत्वमचलमीशभूषणतापि चेति वाल्मीकोक्त्या नागाहारत्वं अपरञ्च—विभूतिर्भसितं भस्म त्तारं रत्तेति भस्मनः भवन्ति पञ्च नामानि हेतुभिः पञ्चभिर्भृशमिति स्कान्दोत्या पञ्च लत्तणयुक्तं भस्मेति शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पतंत्यस्यतेजसे भारतोक्त्या शूलहस्तः, भालात्तभालसम्भूतश्चित्रभानुर्भयंकरः, शिवरहस्योक्त्या त्रिनयनत्वं नमः कूप्याय चावट्याय चेति श्रु सुवर्णरजतभिन्नं धनं कूप्यं सुवर्णादिवीजभूतं धनं तद्रूपाय हे कूप्यरूपाय शिवाय ते तुभ्यं नमो नम इत्यर्थः ॥ २५ ॥

भावार्थः।

आपके मन से चन्द्रमा हुए, नेत्र से सूर्य्य हुए, कान से वायु, से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और पैर से शूद्रजाति इत्यादि प्रमाणों से विष्णु भगवान कहते हैं कि हे शिव! आप च को ललाट में धारण करते हैं। सुरासुरों के तथा जगत् की रक्षा के नि कालकूट को कण्ठ में आप धारण किये नीलग्रीव कहाते हैं। अथवा ग्रीव आपका नाम इस कारण है कि नील जो अविद्यारूप तम है, उ गृणाति अर्थात् ग्रहण [illegible] नीलग्रीव है। एक समय शेषनाग

पीने से वे शिव के भूषण हुए और उनसें पृथ्वी धारण करने की शक्ति आयी। इस वाल्मीकीय के वाक्य से आप नागहार हैं। विभूति, भसित, भस्म, क्षार, रक्षा इन पांच नामों से युक्त भस्म को आप धारण करते हैं। आपके हाथ में त्रिशूल और भाल में अग्निमय नेत्र है। हे महादेव! इस जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसमें आप न हों। स्वर्ण-रजतादिका बीजभूत धन कूप्य कहाता है। अतः कूप्यरूप जो आप हैं, सो आपको नमस्कार है॥ २५॥

तवापाङ्गस्यन्दो यदि भवति भव्यश्शुभकरः
कदाचित्कस्मिंश्चिल्लघुतरनरेऽपि प्रभवति ।
स एवैतल्लोकान्विरचयितुमल्पोपि स महान्
कृपाधारोयन्ते सुरवर नमोऽनन्त शिव ते॥२६॥

तथा यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु इति श्रुत्यभिप्रायं दर्शयन्नाह तवापाङ्गमिति। यदि लघुतरनरेपि तव कृपाकटाक्षं भवति स विरिंचितुल्यः सृष्टिकर्ता भवति अल्पोपि जनः महान्भवति यथा—

विष्ण्वाद्या देवताः सर्वा रावणाद्याश्च राक्षसाः। जनकाद्याश्च राजानो गौतमाद्या महर्षयः। सर्वे शिवप्रसादेन ऐहिकामुष्मिकं फलम्। सम्प्राप्य भोगान्भुक्त्वाथ चान्ते शिवपुरं गता॥ इतिस्मृत्या हे शिव! सर्वेषां ऐहिकपारलौकिकफलप्रदातृत्वं त्वय्येवेति बोध्यम्। मध्ये लिङ्गं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम् [illegible] त्र वागुवाच। शरीरिणी॥ [illegible]

परस्यारं अधस्तादुपरि ध्रुवं ॥ यो याति युवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां स हि। तदूर्ध्वं गतवान्ब्रह्मा हंसरूपी तदा किलः। वाराहरूपमास्था अधो द्रष्टुं गतो हरिः॥ शताब्दं तौ प्रयत्नेन जातश्चोर्ध्वमधः क्रमा त्यादिस्कान्दस्मृत्या अनन्तरूपाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥ २६ ॥

भाषार्थः।

जिनके कृपाकटाक्ष होने पर खराब प्रारब्ध भी उत्तम हो जात और जिनके क्रुद्ध हो जाने पर उत्तम प्रारब्ध भी फलदायक नहीं ह उस शिव में मेरा मन संकल्प करे। इस श्रुति का अभिप्राय लेकर भगवान् कहते हैं कि हे शिव ! आप का कृपाकटाक्ष यदि साधारण के ऊपर भी हो जाय तो वह इस लोक की रचना करने की शक्ति है। विष्ण्वादि देवता, रावणादि राक्षस, गौतमादि महर्षि और जन राजा, ये सब आप ही के कृपाकटाक्ष से लोकपूज्य तथा मान्य हुए यह आप की कृपा का प्रभाव है। हे अनन्तरूपशिव ! आप को मैं नम करता हूं ॥ २६ ॥

भवन्तं देवेशं शिवमितरगीर्वाणसदृशं
प्रमादाद्यःकश्चिद्यदि वदति चित्तेपि मनु
सुदुःखं लब्ध्वान्ते नरकमपि याति ध्रुवमिदं
ध्रुवं देवाराध्यामितगुण नमोऽनन्त शिव ते ॥२७

तथा च न समो न परस्तस्मान्महादेवेति कीर्तनात्। उपेयु नवा तेन [illegible] रोति स्कान्दस्मृत्या सर्वतः प

मित्यादिस्मृत्या भवन्तं देवदेवं इतरदेवसदृशं प्रमादाद्यः कश्चिद-ल्पज्ञः पुरुषः कथयति वा चित्तेपि मनुते तदा ध्रुवं निश्चयेन सुदुःखं लब्ध्वा अन्ते ध्रुवं नरकं याति तद्यथोक्तम्--अन्यदेवसमंशुम्भुंये-जानन्ति विमोहिताः । ते यातनामिमां क्रूरां प्राप्नुवन्ति न संशयः इति स्कान्दस्मृत्या तथा—महादेवाधिकं विष्णुं मनुते यस्तु मानवः तस्य वंशस्य सांकर्य्यमनुमेयं विपश्चितेति पाराशरपुराणोक्तयापि च सर्वेषां देवभक्तानां त्वमेवाराध्योसि अतः हे अमितगुणागार शिव अनन्तरूप ! तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥२७॥

भावार्थः ।

हे देवेश ! देव-दानव दोनों आपकी उपासना करते हैं। अतः आपके सदृश अथवा आपसे बड़ा कोई नहीं है। जो पुरुष प्रमाद वश और देवों के सदृश अथवा और देवों से छोटा आपको मानते हैं, वे अतिशय दुःखको भोग कर अन्त में नरकगामी होते हैं। अतः निश्चय करके सबके आराध्य देव आप ही हैं। हे अमित गुणागार शिव तथा अनन्तरूप ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२७॥

प्रदोषे रत्नाढ्ये मृदुलतरसिंहासनवरे
भवानीमारूढामसकृदपि सम्वीक्ष्य भवता ।
कृतंसम्यङ्नाट्यं प्रथितमपि वेदोपि वदति
प्रभावः कोऽवाऽयं तव हर नमो वीर्य शिव ते ॥२८॥

नन्विह गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्या विद्याधरामरगणा-प्सरसाङ्गणाश्च येऽ...

समये हरपार्श्वसंस्थाइति स्कान्दोक्त्या शिवस्य सर्वपूज्यत्वमाह—प्रदोषेति। तथा च वाग्देवी धृतवल्लकी शतमुखो वेणुं दधत्पद्मज स्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती ज्ञेय प्रयोगावृता। विष्णुः सान्द्रमृदङ्ग वादनपटुर्देवास्समन्तात्स्थिताः सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिमित्यादिस्कान्दस्मृत्या पुनः—जगद्रक्षायै त्वं नटसि न वामैव विभुतेति महिम्नोक्त्या अपरञ्च जटाकटाहसंभ्रद्भ्रमन्निलिम्पनिर्झरीति ताण्डवोक्त्या भवानीं रत्नसिंहासने संस्थाप्य जगद्रक्षार्थं त्वं नृत्यं करोषि इति वेदो वदति तव प्रभावं कोपि जानाति तथा नमो बलाय च बलप्रथमनाय चेति श्रुत्या स बलप्रदातृत्वेन वीर्य्यरूपाय ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥२८॥

भावार्थः।

प्रदोष काल में रत्नसिंहासन पर भवानी को बैठाकर गन्धर्व, य पतग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देव तथा अप्सरागण और ती लोकके भूत पिशचादिगणों के साथ आप स्वयं जगत् की रक्षा के लि नृत्य करते हैं। सरस्वती बाँसुरी बजाती हैं। इन्द्र वेणु बजाते हैं। ब्र ताली बजाते हैं। रमा भगवती महालक्ष्मी गान करती हैं। वि भगवान् मृदङ्ग बजाते हैं और सब देवगण अपना-अपना बाजा ले प्रदोष काल में पार्वती पति का आराधन करते हैं। इस स्कन्द पुराण कथनानुसार सब के उपास्य देव आप हैं। ऐसा वेद कहता है। आ का प्रभाव कौन जान सकता है। सबको बल देने वाले और सबके ब

धनुर्मेरुः शेषो धनुवरगुणो यानमवनिः
रवीन्दू ते चक्रे निगमनिकरा वाजिनिकराः ।।
पुरो लक्ष्यं यन्ता विधिरिपुहरिश्चेति निगमः
किमेवं चाप्येषो निगदति नमः पूर्ण शिव ते ।।२९।।

तथा जगतीन्तु रथं कृत्वा संयोज्य वेदवाजिनमित्यादिस्मृत्या शिवस्य सर्वाधिपतित्वं परिपूर्णत्वञ्च दर्शयतीत्यत आह—धनुर्मेरुरिति। नन्विह यद्बाणोऽभूच्छ्री पतिर्यस्य यन्ता लोकेशोऽभूत्स्यन्दनं भूस्समस्ता वाह वेदा यस्य चैकेषु जाता दग्धा ग्रामास्ताः पुरास्तत्समः कः इति ब्रह्माण्डपुराणोक्त्या शिवस्य सर्वाधिपतित्वं दर्शयति एवञ्च सुमेरुर्धनुः शेषो धनुस्तन्तुः पृथ्वी यानं दक्षिणद्वादशारन्तु षोडशारं तथोत्तरमिति स्मृत्या द्वादशकलायुक्तः सूर्य्यः रथस्य दक्षिणचक्रः एवं षोडशकलायुक्तश्चन्द्रः वामचक्रः अपरञ्च रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः सर इति स्मृत्या विष्णुर्वाणोभूत् चत्वारो वेदा वाजिनः संजाता ब्रह्मा सारथिः इति वेदो वदति अतः हेपूर्ण शिव ! तुभ्यं नमो नमः ॥२९॥

भावार्थः ।

त्रिपुर वध के लिये सुमेरुपर्वत आपका धन्वा हुआ था। शेष नाग धन्वा के तन्तु हुये थे, पृथ्वी रथ हुई थी, सूर्य्य—चन्द्र रथ के चक्र हु थे, चारों वेद घोड़े बने थे विष्णु वाण हुए थे ब्रह्मा सारथी हुए थे, ही बाण में त्रिपुर

बात को वेद-उपनिषद्वादि सब कहते हैं। अतः हे पूर्णरूप शिव ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२६॥

मृडं सत्त्वोपेतं भवमनघयुक्तञ्च रजसा
तमोयुक्तं शुद्धं हरमपि शिवं निष्कलमिति ।
वदत्वेषो वेदस्त्वमसि तदुपास्यं ध्रुवमिदं
त्वमोङ्काराकारो ध्रुवमिति नमोऽनन्त शिव ते ॥३०॥

नन्वेवं तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् । सत्... सर्वगं विष्णुं गुणातीतो महेश्वरेति भारतोक्त्यया गुणत्रयेण ब्र... विष्णुरुद्रादीनुत्पाद्य स्वयं निष्कल एवेत्याह—मृडमिति । तथा-ज... त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः । शक्तेः शिवस्य च ... यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः... विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथेति श्रीमद्भागवतोक्त... ब्रह्मविष्ण्वादीनामुत्पत्तिकर्तृत्वं सदाशिवस्यैवेति बोध्यम् । अ... निश्चयेन सर्वदेवभक्तानां त्वमेवोपास्यः इति वेदो वदति अथ... शिवो हि प्रणवो ह्येष प्रणवो हि शिव स्मृतः । वाच्यवाचकयोर्भे... नात्यन्तं विद्यतेऽनघः ॥ प्रकर्षेण नयेद्यो वै मोक्षं वः प्रणवं विदुरि... स्मृत्या ॐकाररूपोसि अतः हे अनन्त शिव ! तुभ्यं नमः ॥३०॥

भावार्थः ।

मृड रूप जो आपका है सो सत्त्वगुण युक्त होकर पालन करता है ... [illegible]

आपका जो आपका है सो तमोगुण होकर नाश करता है। आप तीनों गुणों से परे निष्कल ब्रह्म और ओंकाररूप हैं। इस बात को वेद, उपनिषद, भारत आदि सब कहते हैं। जैसे मकड़ी अपने शरीर से बहुत सूत्र उत्पन्न करती हैं, फिर अपने में खींच लेती है। वैसे आप ही इस संसार का पालन, सृष्टि और संहार करके सबको अपने में लय कर स्वयं निष्कल होकर रहते हैं। हे अनन्त शिव! आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥३०॥

जगत्सुप्तिं बोधं व्रजति भवतो निर्गतमपि
प्रवृत्तिं व्यापारं पुनरपि सुषुप्तिञ्च सकलम् ।
त्वदन्यत्त्वत्प्रेर्य्यं व्रजति सहसा नेति निगमो ।
वसत्यद्धा सर्वः शिव इति नमः स्तुत्य शिव ते ॥३१॥

एवं सर्वं जगद्यस्य रूपं दिग्वासा तेन कीर्त्यते इति स्मृत्या शिवस्य सर्वकर्तृत्वमस्तीत्याह—जगत्सुप्तिमिति। यथैको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रो केवलो निष्कलश्चेति श्रुत्या तथा त्वत्तो हि जातं जगदेतदीश त्वय्येव भूतानि विशन्ति नित्यंत्वय्येव शम्भो विलयम्प्रयान्ति भूमौ यथा वृक्षलतादयोपीति पद्मपुराणे रामचन्द्रवाक्याद्यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते चेति स्मृत्या हे शिव! सर्वं जगत्त्वत्तो जातं प्रवृत्तिं व्यवहारञ्च कृत्वा पुनस्त्वय्येव लयं व्रजति त्वदन्यत्त्वत्प्रेरकञ्च अन्यत्कोपि नास्तीत्यतः स्तुतियोग्याय शिवाय कल्याणरूपाय तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥३१॥

भावार्थः ।

हे शिव! यह

और सब व्यापार करके पुनः आप ही में लय हो जाता है। अन्य दूसरा कोई आपका प्रेरक नहीं है। सबके प्रेरक आप ही हैं। ऐसा वेद निषेध मुख करके बारम्बार कहता है। सर्वत्र साक्षात् रूप से जगत् में व्यापक होकर आप रहते हैं। अतः आप दिगम्बर हैं। आपही से जगत् उत्पन्न होकर आपही में रहता है पुनः आप ही में लय हो जाता है। ऐसा रामचन्द्र का भी वाक्य है। जैसे मकरी अपनी देह से बहुत सूत्र उत्पन्न करती है पुनः अपने में खींच लेती है। वैसे ही सब जगत् आप से हुआ है। पुनः आप ही में लय हो जाता है। अतः स्तुति योग्य जो आप हैं, सो आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥३१॥

तवैवांशो भानुस्तपति विधुरप्येति पवनः
पवत्येषो वन्हिर्ज्वलति सलिलञ्च प्रवहति।
तवाज्ञाकारित्वं सकलसुरवर्गस्य सततं
त्वमेकः स्वातन्त्र्यं वहसि हि नमो वेद्य शिव ते ॥३२॥

अथापरञ्च आदित्यस्सम्भूत्सोमात्सोमाद्बिल्वः प्रजायते इति स्मृत्या तत्परत्वं वर्णयन्नाह—तवैवांशेति। तस्मैतृणंनिदधावतद्दहेति अग्निस्सर्वजवेन न दग्धुं सशाकेति केनोपनिषच्छ्रुत्या तथा भीषास्माद्वातः पवते भीषोदयति सूर्य्यः भयादग्निश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः एतादृशं महादेवं सर्वश्रुत्यन्वविश्रुतमित्यादि श्रुत्या त्वदङ्गाद्भानुस्तपति विधुर्गच्छति पवनः प्रवहति वह्निर्ज्वलति जलं हति। सर्वेषां तवाज्ञाकारित्वंसिद्धम् सकलदेवगणानामपि स्वातन्त्र्यं
[illegible] तवैव [illegible] स्वातन्त्र्यं वहसि अतस्ते

त्वां नियुक्ते रजोगुणैः । सत्वेन सर्वगं विष्णुं त्वां प्रेषयति केशव ॥ अतः स्वतन्त्रता विष्णोर्युवयोर्नास्ति कश्चन इति ॥ स्कान्दस्मृत्या तथा तपस्तप्त्वा क्रतुंकृत्वा दत्वा दानान्यनेकशः न वाञ्छन्ति यतो लोका गर्भवासं सुदुस्सहम् स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दन ॥ इति देवीभागवतोक्त्यापि च देवानां स्वतन्त्रता नास्ति स्वतन्त्रस्त्वमेवासि अत: हे वेदवेद्य शिव ते तुभ्यं नम इत्यर्थः ॥३२॥

भावार्थः ।

हे शिव ! आप ही के अंश से सूर्य्य उत्पन्न होकर ताप देते हैं। चन्द्रमा भी आप ही की आज्ञा से आकाश में चलते हैं। वायु बहते है। अग्नि बरते हैं। जल बहता है। मृत्यु मारती है। यह सब आप ही की आज्ञा के भीतर हैं। स्वतन्त्र नहीं हैं। स्वतन्त्र एक आप ही हैं। वेद में भी लिखा है कि सब उन्हीं की आज्ञा के भीतर हैं। ॐकार का भी वचन ब्रह्मा विष्णु के प्रति है कि हे ब्रह्मा और विष्णु ! तुम दोनो स्वतन्त्र नहीं हो देवी भागवत में भी कहा है कि तप-यज्ञादि कर्म करके मनुष्य परमेश्वर से यही प्रार्थना करता है कि मैं गर्भवास के दुःख से मुक्त हो जाऊँ। सो विष्णु भगवान की गर्भवास में रुचि क्यों हुई ? अतः वह भी स्वतंत्र नहीं हैं। हे वेद वेद्यशिव ! आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥३२॥

नमो रुद्रानन्तामरवर नमः शंकर विभो ।
नमो गौरीनाथ त्रिनयन शरण्यांघ्रिकमल ।
नमः सर्वः श्रीमन्नघमरुदैश्वर्यनिलय
स्मरारे पापारि [illegible] ते ॥३३

अथ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव चेति भारतस्मृत्या च शिवस्य सर्वदेवमयत्वं दर्शयतीत्यत आह-नमो रुद्रायेति। रुद् दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्द्रावयति नः प्रभुरित्यादिस्मृत्या अथवा रोदयत्येव यस्सर्व्वान्स्वस्मिन्भक्तिविवर्जितानित्यादि स्मृत्या रुद्राय नम इत्यर्थः। तथा वाराहरूपमासाद्य अधो द्रष्टुङ्गतो हरिस्तदूर्ध्वं गतवान्ब्रह्मा हंसरूपी तदा किल इत्यादि स्मृत्या अनन्ताय पुनर्नमः देवदेव महादेव विश्वस्य जगतः पते इति स्मृत्या अमरवराय तुभ्यं नमः तथा शं कल्याणं करोतीति शंकराय सर्वान्देवानीशते जननीभिः परमशक्तिभिरित्यादिश्रुत्या विभुरूपाय गौरीनाथाय नमः सर्वग्रासो महादेवो ब्रह्माण्डान्यखिलं जगदिति स्मृत्या त्रिनेत्राय नमः। शिवे त्रातरिभक्तानाक्व भयं शरणैषिणामित्यादि स्कान्दस्मृत्या शरण्यांघ्रिकमलाय नमः। यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः। अयत्नेनैव जानाति तेन प्रोक्तस्सदाशिवः॥ इति स्कान्दस्मृत्या सर्वव्यापकाय नमः। देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवं। श्रीमन्तस्ते भवन्त्येव न तु लक्ष्म्याः पतिर्हरिरित्यादिस्मृत्या श्रीकराय अघहराय नमः सुरास्तास्तामृद्धिं विदधति महद्भ्रू प्रणितामित्यादिमहिम्नस्मृत्या मरुदैश्वर्य्यनिलयाय नमः तथा च भालात्तभालसम्भुतश्चित्रभानुर्भयं करः भस्मावशेषं कृत्वैव प्रशान्तस्तदनन्तरमित्यादि शिवरहस्योक्तस्मृत्या कामनाशकराय नमः तथा तावद्गर्जन्ति पापानि जन्मजन्मार्जितानि च यावन्न जाति शरणं देही शिवपदाम्बुजमित्यादि स्मृत्या पापनाशकराय सर्वत्र जयरूपाय सेव्याय ते तुभ्यं वारं वारं नमो नम

भावार्थः ।

आप अपनी भक्ति से विमुख जनोंको रुलाते हैं अथवा रु नाम दुःख का है, तिसको जो द्रावण करे अर्थात् नाश करे उसको रुद्र कहते हैं । अतः हे रुद्र ! हम आपको नमस्कार करते हैं । ब्रह्मा-विष्णु ये दोनों आपके लिंग का अन्त पाने को गये, किन्तु थकित होकर लौट आये—इन्हें अन्त नहीं ही मिला । अनन्तरूप जो आप हैं, सो आपको नमस्कार है । हे शंकर ! हे गौरीनाथ ! हे त्रिनयन ! आपको नमस्कार है । हे शरण्यांघ्रिकमल ! आपको नमस्कार है । जगत् में जो कुछ कार्य्य होता है, सो सब आपके सन्मुख होता हैं, अतः आप सर्वज्ञ हैं । ब्रह्म-विष्ण्वादि देवों का जो विभव है सो सब आप ही का दिया हुआ है । अतः लक्ष्मी को देने वाले आप हैं । हे कामनाशक ! हे पापारिन् ! आपकी जय हो—जय हो । हे सर्वसेव्य शिव ! मैं आपको वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥३३॥

महादेवामेयानघगुणग्रामसततं
नमो भूयोभूयः पुनरपि नमस्ते पुनरपि ।
पुराराते शम्भो पुनरपि नमस्ते शिव इति
नमो भूयो भूयः शिव शिव नमोऽनन्त शिव ते ॥३४॥

तथा च न समो न परस्तस्मान्महादेवेति कीर्तनादित्यादिस्मृत्य' सर्वेषां देवानां मध्ये शिवस्यैव महादेवत्वमस्तीत्यत आह—मह' देवेति । प्रमाणरहितत्वेनामेयत्वं पापरहितत्वेनानघत्वं गुणस हत्वेन गुणग्रामः ...

हेतुर्महादेवः स सुदर्शनचक्रदः इति काशीखण्डे विष्णुवाक्यम् एवम्भूतं शिवं वारं वारं पुनरपि वारम्वारं नमस्ते। क मे भुजाः पर्वतराजसारा क दानवः कृपणः सत्वहीनः इति स्कान्दस्मृत्या हेपुराराते! पुनरपिभूयोभूयः नमस्ते तथा च यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः इति स्मृत्या अनन्ताय ते तुभ्यं नमो नम इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

भावार्थः।

हे महादेव! आप अमेय अर्थात् प्रमाणरहित हैं और सब गुणग्राम गुणसमूह आप में हैं। अतः हम आपको वारम्वार नमस्कार करते हैं। पुनः वारम्वार नमस्कार करते हैं। हे त्रिपुरारी! पुनः वारम्वार आपको नमस्कार है। हे अनन्त शिव! पुनः मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥३४॥

कदाचिद्गण्यन्ते निविडनियता वृष्टिकणिकाः
कदाचिन्नक्षत्राण्यपि सिकतलेशाः कुशलिना।
अनन्तैराकल्पं शिवगुणगणाश्चारुरसनै
र्न शक्यन्ते नूनं गणयितुमुखित्वापि सततम्॥३५॥

क तथा च असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी। लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं [illegible]ऽपि तव गुणानामीश पारं न याति इत्यादिस्मृत्या शिवगुणक[illegible]सम्भवं दर्शयन्ता[illegible] कदाचिदिति। कदाचित् वृष्टिकणिकाः [illegible] तव[illegible] [illegible]ाः सिकताः

अपि केनचिद्गण्यन्ते परन्तु तव महिम्नः गणना असम्भवः । यथायम्वा वेधा वेद नो नैव विष्णुर्नो वा वेदा वेद नो नैव वाणी तं देवेशं मादृशः कोल्पमेधा याथार्थ्याद्वेवेत्यहो विश्वनाथमिति ब्रह्माण्डपुराणे व्यासोक्त्यापि बोध्यम् ॥३५॥

भावार्थः ।

हे शिव ! कदाचित् वृष्टि की बूंदें कोई गणना करे तो कर सकता है और कदाचित् गङ्गा के सिकता कण गिनने में बहुत लोग कुशल हो सकते हैं और नक्षत्रों को भी ज्योतिष शास्त्र द्वारा गणना होना सम्भव है परन्तु आप की जो अनन्त महिमा है, उसका अन्त किसीने नहीं पाया और न पाने की सम्भावना ही है ॥३५॥

प्रमादाद्ये केचिद्विदितमपराधाद्विधिहताः
कृताः सर्व्वेऽपि प्रसममुपयान्तु स्फुटतरम् ॥
शिवः श्रीमच्छम्भो शिवशिवमहेशेति च जपन्
कचिल्लिङ्गाकारे शिवशिव वसामिस्थिरतरम् ॥३६॥

नन्विह कृतघ्नो मुच्यते कल्पे तथान्ये तारतम्यतः । महापापोपपापेभ्यो मद्रोहेनैव निष्कृतिः ॥ शास्ताहं मोचकस्तेषां न यमो भैरवो नहीति शिवरहस्योक्तस्मृत्यर्थं दर्शयन्नाह—प्रमादादिति । अथ शिवलिङ्गार्चनं साम्याद्विष्णुरूपादिपूजनं तप्तचक्राङ्कनं मोहान्मद्द्रोह परमो मतः इति स्मृत्या ये केचिद्विधिहताः प्रमादवशात् शिवद्रो कुर्वन्ति तेषां प्राय[illegible]

शिवभक्त्या शुद्ध्यन्तीत्याशयः । तद्यथोक्तम्—कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतन्तथा पायात्समाश्रिते लिङ्गे मुच्यते नात्र संशयः इत्यादिस्मृत्या बोध्यम् ॥३६॥

भावार्थः ।

हे महादेव ! प्रमादवश जो आपकी निन्दारूपी अपराध करते हैं। (निन्दा वही है कि और देवों के बराबर शिव को मानना अवैदिक ऊर्ध्वपुंड्रादिवेपको धारण करना) उन भाग्यहीन पुरुषों का अपराध केवल आपके नामस्मरण पूजन से ही दूर होता है । अन्यथा सैकड़ो व्रत यज्ञादि करने से नहीं दूर होता । विष्णु भगवान कहते हैं—हे शिव ! शिव नाम जपते हुये अनन्य शिवभक्त होकर कब मैं एकान्तवासी होऊँगा, यही हमारी प्रार्थना है ॥३६॥

इति स्तुत्वा शिवं विष्णुः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
निर्विण्णोन्वभवन्मन्त्रं कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥३७॥
तदा शिवः शिवं रूपं आदायोवाच सर्वगः ॥
भीषयन्नखिलान्भूतान्मेघगम्भिरया गिरा ॥३८॥
मदीयम्परमं रूपं कथं ज्ञेयं भवादृशैः ॥
यन्न वेदैरपि ज्ञातमित्यु क्त्वान्तर्दधे शिवः ॥३९॥

नन्वेवं प्रकारेण विष्णुः शिवं स्तुत्वा वारं वारं प्रणम्य अनन्य [illegible] तदा [illegible] भीषयन् शिवः

कल्याणरूपमादाय मेघगम्भीरया वाण्या विष्णुं प्रत्युवाचेति परमार्थः ॥३७॥ ॥३८॥

अथ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति श्रुतिप्रोक्तं मदीयं रूपं वाङ्मनसातीतं तथा वेदैरपि न ज्ञातं तद्रूपं भवादृशैरल्पज्ञैः कथं ज्ञेयमित्युक्त्वा अन्तर्हितोऽभूदित्यर्थः ॥ ३९ ॥

भावार्थः ।

इस प्रकार विष्णु भगवान शिव की स्तुति और बारम्बार प्रणाम करके हाथ जोड़कर बैठ रहे और शिवकी अनन्य भक्ति को हृदय में धारण करके ध्यानमग्न हो गये ॥ ३७ ॥

इसके बाद शिव कल्याणरूप धारण कर अखिल ब्रह्माण्ड को क्षुभित करते हुए ब्रह्मा-विष्णु के प्रति मेघ के सदृश गम्भीर वाणी से बोले—॥ ३८ ॥

तुम सबके सदृश अल्पज्ञ पुरुष हमारे रूप को नहीं जान सकते। हमारा दिव्य रूप जो है, उसको वेद ने भी नहीं जाना। ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये ॥ ३९ ॥

ततः पुनर्विधिस्तत्र तपस्तप्तं समाचरत् ।
विष्णुश्च शिवतत्त्वस्य ज्ञानार्थमतियत्नतः ॥४०॥

तादृशं शिवमेवेच्छन्पूजयित्वा वसाम्यहम् ।
तान्यो ...

त्वयापि शांकरं लिङ्गं पूजनीयं प्रयत्नतः ।
विहायैवान्यदेवानां पूजनं शेष सर्वदा ॥४२॥

इति श्रीशिवरहस्ये सप्तमांशे विष्णुकृतं शिवमहिम्नस्तोत्र सम्पूर्णम् ।

तत्पश्चाद्ब्रह्मा विष्णुश्च शिवतत्त्वज्ञानार्थं अतियत्नेन पुनस्तपस्तप्तुं प्रवृत्तौ ॥ ४० ॥ ब्रह्माणम्प्रति विष्णुः कथयति—शिवतत्त्वज्ञानार्थं शिवं सम्पूज्यात्र वसामि । तद्यथोक्तं स्मृत्यन्तरे विष्णु वाक्यम्—षष्टिकोटियुगाज्जाता मम शैवव्रतस्य हि । इदानीमपि देवेश शम्भुर्मे न प्रसीदतीत्यादिस्मृत्या देवानां मध्ये शिवं संत्यज्य नान्यम्पूजयामीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ हेब्रह्मन् ! सर्वान्देवान्विहाय त्वयापि यत्नतः शिवलिङ्गं पूजनीयम् । यथोक्तम्-शिवान्यदेवास्त्वत्यल्पमैहिकामार्थकामदाः । अतिप्रीताः प्रयच्छन्ति स्वस्वशक्त्यानुरोधतः इति स्मृत्या तेनैव अशेषसिद्धिर्भविष्यतीति शिवम् ॥

इति श्रीयोगिराजेन विप्रराजेन वै कृतम् ।
सुधियस्तेन तुष्यन्तु भाष्यं नानार्थसंयुतम् ॥ ४२ ॥

भावार्थः ।

इसके वाद शिवतत्त्व प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा-विष्णु दोनों तप करने में प्रवृत्त हुए ॥ ४० ॥ विष्णु भगवान ब्रह्मा से कहते हैं कि [illegible] तत्त्वज्ञान [illegible] । तद [illegible] नहीं करता । [illegible] शिव

का तुमको दर्शन हुआ है, उन्हीं का पूजन करता हुआ सदा मैं यहीं रहता हूं ॥ ४१ ॥ सबको छोड़कर तुम भी शिवलिङ्ग का यत्नपूर्वक पूजन करो, इससे अशेष सिद्धि प्राप्त होगी । ॥ ४२ ॥

इति श्रीविष्णुकृतमहिम्नस्तोत्र भाषा टीका समाप्ताः ।

कथितमिदमगम्यं शास्त्रसिद्धान्तमेकम्
परशिवपरतत्त्वं वेदप्रोक्तं हि यत्तु ।
बुधवरविदुषाम्वै सम्यगानन्दहेतोः
कलिमलभ्रमितानां दुःखसंनाशनाय ॥
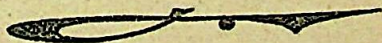
हरि-हरतारतम्यसहितम् ।

ॐ

श्रीगौरीशङ्कराभ्यां नमः ।

हरिहरतारंतम्यम् ।

(वसन्ततिलकावृत्तं सर्वत्र)

वृद्धान् श्रुतिस्मृतिपुराणविशेषभाषान्
निःशंकबुद्धिकुशलान् प्रणिपत्य नित्यम् ।
अद्वैतमेकमभजं श्रितभेदबुद्धिः
पृच्छाम्यहं हरिहरस्थिततारतम्यम् ॥ १ ॥

एकः समुद्रसलिले वटपत्रशायी
त्वन्यः समुद्रशरधिस्त्रिपुरप्रभेदे ।
को वानयोरधिक इत्यनुचिन्त्य वृद्धाः
सत्यं वदंतु तमिमं वयमाश्रयामः ॥ २ ॥

एको भुजंगशयने स्वपतीह नित्य-
मन्यो भुजंगकटको नटतीह नित्यम् ।
को वा..
सत्यं..........................

एकः पुनर्भुवि दधौ नवनीतखंड—
मन्यो दधौ नवसुधामयचन्द्रखंडम् ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ४ ॥

सूत्रं चकार चतुराननमेवमेकः
सूतं चकार चतुराननमेव चान्यः ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ५ ॥

एकोऽस्ति नन्दकुटिलव्रजमंदिरेषु
त्वन्योऽस्ति मेरुशिखरस्थितकंदरेषु ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ६ ॥

एकः ❀ सहस्रकमलैर्यमुपार्च्य तस्था—
वन्यस्तु तैरुपचितः सह मोदतेस्म ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ७ ॥

गाढांधकारघननीलशरीर एको—
ज्योत्स्नातिनिर्मलविशुद्धशरीर एकः ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ८ ॥

एकः कुमारमभजत्सुतरामनंगः
अन्यः प्रयाति किल शक्तिधरं कुमारम् ।
को वा...
सत्यं... ॥ ९ ॥

स्त्रीरूपमाप किल पूर्वमभीष्टमेक—
स्त्वन्यस्तमेवमभजत्पुरुषस्य रत्या ।
को वा...
सत्यं... ॥ १० ॥

मुष्णाति वल्लवगृहे नवनीतमेक—
स्त्वन्यो ददाति सुधया परमामृतं तत् ।
को वा...
सत्यं... ॥ ११ ॥

एकः प्रयाति हि सकाम इति प्रसिद्धि-
मन्यस्तथा निहतकाम इति प्रसिद्धिम् ।
को वा...
सत्यं... ॥१२॥

एकस्य जात इति संततलोकवार्ता
नान्यस्य तादृशविदूषितदोषवार्ता ।
को वा...
सत्यं... ॥१३॥

एकस्य वार्धुषिकजीवनवृत्तिरासी—
दन्यस्य चापि बहुभाग्यदवृत्तिरासीत् ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥१४॥

एकस्तु बाणगतिमेत्य करव्रणोऽद्य
स्त्वन्योऽत्तिपत्पुरजयाय तमेव बाणम् ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥१५॥

एको विभाति रविचंद्रमयद्विनेत्र-
स्त्वन्यो रवींदुशिखिरूपघनत्रिनेत्रः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥१६॥

एकः सदा सवितृमंडलमध्यवर्ती
चान्यः सदा सवितृदन्तभिदा पटीयान् ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥१७॥

एकस्तु दीनगजरक्षणदत्तबुद्धि—
स्त्वन्यस्तु मत्तगजशिक्षणदत्तबुद्धिः ।
को वा..................................
[illegible].................................. ॥१८॥

[illegible] । तव [illegible]

गोपालकत्वमधिगम्य बिभाति चैक—
स्त्वन्यो वृषाधिपतिवाहन इत्यवादि ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥१९॥

ब्रह्माणमाप निजनाभिसरोज एकोऽ—
न्यो ब्रह्मणो नखमुखेन शिरश्चकर्त ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥२०॥

विश्वैकदेशवसतिर्मुदमेति चैको
विश्वाधिकोऽयमिति गच्छति कीर्तिमन्यः ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥२१॥

एकोऽस्ति केशव इति प्रथितस्तु लोकेऽ—
न्यो व्योमकेश इति याति जगत्प्रसिद्धिम् ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥२२॥

एकः सभक्त्युदहरन्निजमक्षिपूर्त्यै
त्वन्यस्तदा नयनमस्य ददौ च चक्रम् ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥२३॥

एको ह्यगाधलुठदब्धिजले निमग्नः
कैलासशैलशिखरे खलु वर्ततेऽन्यः ।
को वा..
सत्यं.. ॥ २४ ॥

एकः सुरैरुपगिरं हि तपश्चकार
तस्मै ददौ सुतमधिक्षिति सांबमन्यः ।
को वा..
सत्यं.. ॥ २५ ॥

एकस्तु नैल्यमुपयाति शरीरमात्रे
त्वन्यस्तु नैल्यमुपयच्छति कण्ठमात्रे ।
को वा..
सत्यं.. ॥ २६ ॥

एकः प्रसिद्ध इह धेनुवधं विधाय
व्याघ्रं निहत्य नितरामितरः प्रसिद्धः ।
को वा..
सत्यं.. ॥ २७ ॥

एकः सुवर्णवसनं विदधाति कट्या—
मन्यः सुवर्णगिरिचापमधात्कराग्रे ।
को वा..
सत्यं.. ॥ २८ ॥

एकः सदाष्टमहिषीरुपयाति शीघ्र—
मन्यो बिभर्ति नितरामपि चाष्टमूर्तिम् ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ २६ ॥

एको दधौ शिरसि बर्हिणपिच्छमात्र—
मन्यो मयूरवरवाहनपुत्रदृष्टिः ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ३० ॥

एको दधाति हृदि कौस्तुभरत्नमेक—
मन्यः सहस्रफणिरत्नमहींद्रहारम् ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥ ३१॥

इंद्रानुजत्वत उपेंद्र इतीड्य एक
इन्द्रादिभिः सुरगणैः परिपूज्यतेऽन्यः ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥३२॥

लक्ष्मीं वहन्नपि च वांछति वित्तमेको
भिक्षामटन्नपि च यच्छति भाग्यमन्यः ।
को वा.................................
सत्यं................................. ॥३३॥

एकः करेण धृतवानिह शंखमेक—
मन्यस्तथैव बहुविश्वसृजां कपालान् ।
को वा...
सत्यं... ॥३४॥

एकस्तु माधव इति प्रथितः स्वनाम्ना
त्वन्यो ह्युमाधव इति प्रथितः स्वनाम्ना ।
को वा...
सत्यं... ॥३५॥

वृंदावने चरति गोभिरुपेत्य चैकः
त्वन्यो भृशं पितृवने चरतीह भूतैः ।
को वा...
सत्यं... ॥३६॥

व्याप्तश्च विष्णुरयमित्यनुभाव्य एकोऽ—
न्यो विष्णुवल्लभ इति प्रथितस्त्रिलोक्याम् ।
को वा...
सत्यं... ॥३७॥

एकः कदापि मधुमात्रहृतिं चकार
त्वन्यो महाविषहृतिं च तथा चकार ।
को वा...
सत्यं... ॥३८॥

एकस्तु कैटभवधे निपुणस्तथैव-
मन्यस्तु मृत्युहनने निपुणो नितांतम् ।
को वा..
सत्यं.. ॥३६॥

एको व्रजेषु कुरुते मृदु वेणुनाद—
मन्यो लयेषु कुरुते विकटाट्टहासम् ।
को वा..
सत्यं.. ॥४०॥

पक्षींद्रवाहन इति प्रथितोऽयमेक—
स्त्वन्यो महोक्षवरवाहन इत्यभाणि ।
को वा..
सत्यं.. ॥ ४१ ॥

एकस्तु योनिज इति ह्यगमत्प्रसिद्धि—
मन्यस्त्वजात इति याति जगत्प्रसिद्धिम् ।
को वा..
सत्यं.. ॥ ४२ ॥

एकस्त्वनित्य इति सुप्रथितो जगत्या—
मन्यस्तु नित्य इति शंसति लोकसिद्धिम् ।
को वा..
सत्यं.. ॥ ४३ ॥

एको ह्युलूखलनिबद्ध इति प्रसिद्ध-
स्त्वन्यो विमुक्तभवपाश इति प्रसिद्धः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥ ४४ ॥

एकस्तु पार्थरथवाजिकृतोपचार--
स्त्वन्यस्तु पार्थसमरशुप्रणुतप्रभावः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥४५॥

एको जनार्दन इति प्रकटीकृतोऽय—
मन्यस्तु शंकर इति स्फुटमीड्यतेस्म ।
कोवा..................................
सत्यं.................................. ॥४६॥

एकस्तु राम इति कोमलनाम धत्ते
रामेश्वरोऽन्य इह पौरुषनाम धत्ते ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥४७॥

भक्तं बलिं पुनरधः कृतवानिहैको
भक्तं कुबेरमधिकश्रियमाधृतोऽन्यः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥४८॥

व्याधादिनी च हृतनैजवधूक एको
व्याधायितोऽपि निगमैरखिलः स्तुतोऽन्यः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥४९॥

एकस्य सेवकजना भृशदग्धगात्रा
ह्यन्यस्य सेवकजनाः सितभूतिरेखाः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥५०॥

एको दधौ सितमृदं तिलकं ललाटे
त्वन्यो दधौ हुतवहं तिलकं ललाटे ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥५१॥

एको दधाति तुलसीकृतमालिकां ह्य—
न्यो दधाति विधातृकपालमालाम् ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥५२॥

गोपालकैरनुसृतः सुतरामिहैको
दिक्पालकैरनुसृतस्तु दिगम्बरोऽन्यः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥५३॥

एको गिलत्यनुदिनं नवनीतमेव—
मन्यो गिलत्यतिभयङ्करकालकूटम् ।
को वा..............................
सत्यं.............................. ॥५४॥

एकः पपौ स्तनविषं खलु पूतनाया
अन्यः पपौ भुवनभीकरकालकूटम् ।
को वा..............................
सत्यं.............................. ॥५५॥

एको मृगोभिलषितो गहने चचार
ह्यन्यो मृगं करतलेन वहंश्चचार ।
को वा..............................
सत्यं.............................. ॥५६॥

एको दशास्यहृतनैजवधूक आसी—
दन्यो वधूविलसितार्धशरीर आसीत् ।
को वा..............................
सत्यं.............................. ॥५७॥

एकस्तु शैलनिचयैर्जलधिं बबंध—
ह्यन्तस्तमेव शरधिं त्रिपुरे चकार ।
को वा..............................
सत्यं.............................. ॥५८॥

एकस्तु मर्कटभटेन ददाह लंकां
ह्यन्यो ददाह नयनेन पुरत्रयं च ।
को वा..
सत्यं.. ॥ ५९ ॥

एकस्तु मर्कटभटैर्निजकार्यकारी
ह्यन्यः सुरेन्द्रनिवहैर्निजकार्यकारी ।
को वा..
सत्यं.. ॥६०॥

एको विवेश सरयूसलिलांतराले
त्वन्यो दधौ त्रिपथगां कणवज्जटायाम् ।
को वा..
सत्यं.. ॥६१॥

एकः शिवं जनयतिस्म सभक्तिसेतौ
रामेश्वरोऽथ तु जनैः परिदृश्यतेऽन्यः ।
को वा..
सत्यं.. ॥६२॥

एकस्तु मत्स्यतनुमेत्य गतोऽब्धितोये
ह्यन्यस्तु मत्स्यकलितध्वजधक् प्रसिद्धः ।
को वा..
सत्यं.. ॥६३॥

एको नृसिंहतनुमेत्य जघान दैत्य—
मन्यस्तमेव हतवान् शरभावतारे।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥६४॥

एको वटुः कपट इत्यखिलैरभाणि
विद्यागुरुस्त्वपर इत्यखिलैरभाणि।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥६५॥

एकोऽतिदम्भहतवानिह ताटकां स्त्री—
मन्यो जघान च मदांधकराक्षसं हि।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥६६॥

एकस्य रावणवधेऽस्ति दृढासिशक्ति—
रन्यस्य सर्वविलयेऽपि चास्ति शक्तिः।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥६७॥

एकः प्रसिद्ध इह संप्रति वासुदेवो
देवो महानिति सदा त्वपरः प्रसिद्धः।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥६८॥

एकः पदत्रयमितं त्रिजगच्चकार
ह्यन्यः पदाहतिहतं त्रिजगच्चकार ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥६९॥

एकस्य रूपमधिगच्छति तामसत्व—
मन्यस्य रूपमधिगच्छति सात्त्विकत्वम् ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥७०॥

एकः पदेन शकटं सहसा नुनोद—
ह्यन्यः पदांगुलिनखेन गिरिं नुनोद ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥७१॥

नीलोऽपि नीलयमुनाजलमग्न एकः
शुभ्रोऽपि शुभ्रतरदिव्यधुनीधरोऽन्यः ।
को वा..................................
सत्यं.................................. ॥७२॥

एकस्य सूनुरपि नेत्रकृशानुदग्धो
ह्यन्यस्य वत्स उदितः खलु शाश्वतायुः ।
को वा..................................
सत्यं..........

एको वराहतनुमेत्य भुवं लिलेख
ह्यन्यो भुवं पुरजये स्वरथं चकार ।
को वा ....
सत्यं .... ॥७४॥

एकश्चलां निजवधूं न शशाक रोद्धु—
मन्यश्चकार वनितां स्फुटमर्धगात्रे ।
को वा ....
सत्यं .... ॥७५॥

एको विभाति नितरां शिखिपिच्छचूड—
स्त्वन्यो विभाति नितरां नवचन्द्रमौलिः ।
को वा ....
सत्यं .... ॥७६॥

एकस्य सूकरजनिः सुलभास्ति हीना
ह्यन्यस्य चच्छरभरूपमतिप्रसिद्धम् ।
को वा ....
सत्यं .... ॥७७॥

एको विभाति भृशमेकमुखांबुजेन
ह्यन्यो विभाति भुवि पंचमुखैः प्रसिद्धैः ।
को वा ....
सत्यं .... ॥७८॥

एकश्चतुर्भुज इति प्रथितस्त्रिलोक्या—
मन्यो भृशं दशभुजैः प्रथितो जगत्याम् ।
को वा...
सत्यं... ॥७९॥

पंचायुधप्रबलशक्तिमुपैति चैकः
सर्वायुधप्रबलशक्तिमुपैति चान्यः ।
को वा...
सत्यं... ॥८०॥

एको मुमूर्च्छ गहने च किरातबाणा—
दन्यो ह्यमूर्च्छयदुरुत्रिपुरस्य दैत्यान् ।
को वा...
सत्यं... ॥८१॥

एकस्तु चक्रमधिगम्य ररक्ष लोका—
श्चक्रप्रदः पुररिपुः सुरचक्रवर्ती ।
को वा...
सत्यं... ॥८२॥

एकस्त्रिपादिति भृशं जगति प्रसिद्धो
ह्यन्यस्य सेवकजनोऽपि तदा प्रसिद्धः ।
को वा...
सत्यं... ॥८३॥

एकस्तु साधु हयवक्त्र इति प्रसिद्धो
ऽन्यस्य पुत्र इभवक्त्र इति प्रसिद्धः ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥८४॥

एकस्य भाति चतुरानन एव सूनु—
रन्यस्य भाति हि षडानन एव सूनुः ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥८५॥

आदाय वेदमदिशद्विधये पुरैकोऽ—
न्यो वेदवाजिषु विधिं विदधे च सूतम् ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥८६॥

एको जघान नरकं सुतरामिहैक—
स्न्यः स्वभक्तनरकान् बहुलान् जघान ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥८७॥

एकः प्रसिद्ध इह धेनुवधं विहित्वा
व्याघ्रं निहत्य नितरामितरो रराज ।
को वा.......................................

॥८८॥

एकस्तु याचकवर्ति च पुनर्ययाचे
ह्यन्यो ददाविह परत्र च सौख्यमेव ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥८९॥

ग्राहं निहत्य करिराजमरक्षदेको
मृत्युं निहत्य मुनिपुत्रमरक्षदन्यः ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥९०॥

एकः पपौ स्तनरसं विषतीव्रवेग—
मन्यः पपौ भुवनभीकरकालकूटम् ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥९१॥

भक्तेन केनचिदबन्धयदङ्घ्रिमेको—
भक्तेन केनचिदपीतयदङ्घ्रिमन्यः ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥९२॥

एकोऽवधीद्रिपुगणं च कृतावतारः
शत्रून् जयेति च परः समदादनुज्ञाम् ।
को वा.......................................
सत्यं....................................... ॥९३॥

ग्राहं निहत्य गजहस्तमरक्षदेको
मृत्युं निहत्य मुनिपुत्रमरक्षदेकः ।
को वा ....
सत्यं .... ॥६४॥

एकोऽर्जुनस्य जयदः खलु सूतभावा—
दन्योऽर्जुनस्य जयदोऽभवदस्त्रदानात् ।
को वा ....
सत्यं .... ॥६५॥

एको व्यधात्तृणमिवाद्रिवरं सुमेरुं
गोवर्धनाद्रिमितरस्तु करे दधानः ।
को वा ....
सत्यं .... ॥६६॥

एकं द्विजातिमखिलेषु सुरेषु मध्ये
तत्रं परं तु परमार्थविदो वदंति ।
को वा ....
सत्यं .... ॥६७॥

एकस्तु पीठमुपयाति जलेजनेत्रो
लिङ्गस्वरूपमधिगच्छति भूतलेऽन्यः ।
को वा ....
सत्यं .... ॥६८॥

एको दधार कमनीयहिरण्यचेल—
मन्योऽगमत् कनकवीर्य इति प्रसिद्धिम् ।
को वा..
सत्यं.. ॥९९॥

एकोऽब्धिदेशलवमत्र बबन्ध यत्ना—
दन्यस्य सप्तजलधीन् पिबतिस्म भक्तः ।
को वा..
सत्यं.. ॥१००॥

अद्वैतमेव भजनीयमतोऽप्रमेयं
नित्यं निरंजनमनाकृतिनिर्विकल्पम् ।
सत्यं परात्परमखंडचिदात्मभाव—
मानन्दमव्ययमजं शिवमाश्रयामः ॥१०१॥

श्रीकान्तनामविबुधेन्द्रतनूभवेन—
रामेश्वराध्वरिसुधामणिना प्रणीतम् ।
लोके त्विदं हरिहरस्थितितारतम्यं—
मत्वाधिकं हि शतकं सुधियः पठंतु ॥१०२॥

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—

१—"परमहंसाश्रम"

डुमराँव राज, जि० शाहाबाद।

२— गौरीशंकर गनेड़ीवाला,

छपरा।

[illegible]